1 भीष्म साहनी

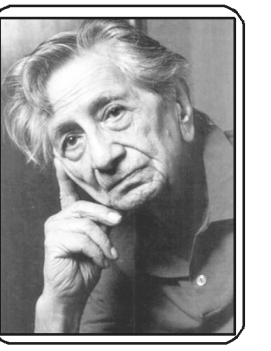

व्यक्तित्व

भीष्म साहनी का जन्म रावलपिंडी (पाकिस्तान) में 8 अगस्त, सन् 1915 ई० को हुआ था। पिता का नाम हरबंशलाल था। राष्ट्रीय आन्दोलन और देश-विभाजन की घटनाओं का आपके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। 1957 से 1963 तक आपने मास्को के विदेशी-भाषा-प्रकाशन-गृह में अनुवादक के रूप में काम किया और टालस्टाय, आस्त्रास्की आदि की रचनाओं के अनुवाद किये। दिल्ली कॉलेज में अंग्रेजी के वरिष्ठ प्रवक्ता के पद पर भी साहनी जी ने कार्य किया। 88 वर्ष की उम्र में 11 जुलाई, सन् 2003 ई० को इस कथा लेखक का निधन हो गया।

कृतित्व

भीष्म जी के तीन कथा-संकलन प्रकाशित हो चुके हैं—'**भाग्यरेखा**', '**पहला पाठ**' और '**भटकती राख**'। '**झरोखे**', '**कड़ियाँ**', '**तमस**' आदि उपन्यास भी आपने लिखा।

कथा-शिल्प एवं भाषा-शैली

भीष्म साहनी गहनतम मानवीय संवेदनाओं के कथाकार थे। आपकी विचार-दृष्टि राष्ट्रीय और समाजपरक थी। आप अपनी कहानियों में निम्न मध्यवर्गीय परिवारों के अन्तरंग चित्र बड़े मार्मिक रूप में प्रस्तुत करते थे। कहानियों के विषय जाने-पहचाने होते थे, किन्तु भीष्म साहनी की विशेषता उनके किसी नये कोण को उजागर करने में थी। व्यंग्य और करुणा आपकी कहानियों के प्रमुख गुण हैं। कहानियों में प्रायः ही किसी न किसी प्रकार की विडम्बना को अभिव्यक्ति मिली है, जो किसी-न-किसी रूप में हमारे वर्तमान समाज के अन्तर्विरोधों की ओर संकेत करती है। आपकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं—'**माता-विमाता**', '**बीवर**', '**सिर का सदका**', '**प्रोफेसर**', '**कटघरे**', '**अपने-अपने बच्चे**', '**कुछ और साल**', '**खून का रिश्ता**', '**चीफ की दावत**', '**सिफारिशी चिट्ठी**', '**वाङ् चू**' आदि।

आपकी कथाशैली की प्रमुख विशेषता है सरलता और सहजता। आधुनिक कहानी की पेचीदगी, प्रतीकात्मकता और सूक्ष्म शिल्प आपकी कहानियों में नहीं है, किन्तु प्रेषणीयता और प्रभाव की दृष्टि से वे निश्चय ही बेजोड़ ठहरती हैं। आपकी कथा-शैली में 'रिपोर्ताज' की पद्धति का विशिष्ट उपयोग मिलता है। कहानियों की भाषा व्यावहारिक हिन्दी है, जिसमें उर्दू की शब्दावली का विशेष योगदान रहता है। जिस प्रकार आपकी कहानियों का विषय-वस्तु व्यक्तिनिष्ठ न होकर समाजपरक है, उसी प्रकार उनकी भाषा भी पूर्वाग्रह-मुक्त और लोकपरक है। आधुनिक कहानीकारों में आपका विशिष्ट स्थान है।

खून का रिश्ता

खाट की पाटी पर बैठा चाचा मंगलसेन हाथ में चिलम थामे सपने देख रहा था। उसने देखा कि वह समधियों के घर बैठा है और वीरजी की सगाई हो रही है। उसकी पगड़ी पर केसर के छींटें हैं और हाथ में दूध का गिलास है जिसे वह घूँट-घूँट करके पी रहा है। दूध पीते हुए कभी बादाम की गिरी मुँह में जाती है, कभी पिस्ते की। बाबूजी पास खड़े समधियों से उसका परिचय करा रहे हैं। यह मेरा चचाजाद छोटा भाई है, मंगलसेन! समधी मंगलसेन के चारों ओर घूम रहे हैं। उनमें से एक झुककर बड़े आग्रह से पूछता है और दूध लाऊँ, चाचाजी? थोड़ा-सा और? अच्छा, ले आओ, आधा गिलास, मंगलसेन कहता है और तर्जनी से गिलास के तल में से शक्कर निकाल-निकालकर चाटने लगता है...

मंगलसेन ने जीभ का चटखारा लिया और सिर हिलाया। तम्बाकू की कड़वाहट से भरे मुँह में भी मिठास आ गयी, मगर स्वप्न भंग हो गया। हल्की-सी झुरझुरी मंगलसेन के सारे बदन में दौड़ गयी और मन सगाई पर जाने के लिए ललक उठा। यह स्वप्नों की बात नहीं थी, आज सचमुच भतीजे की सगाई का दिन था। बस, थोड़ी देर बाद ही सगे सम्बन्धी घर आने लगेंगे, बाजा बजेगा, फिर आगे-आगे बाबूजी, पीछे-पीछे मंगलसेन और घर के अन्य सम्बन्धी, सभी सड़क पर चलते हुए, समधियों के घर जायेंगे।

मंगलसेन के लिए खाट पर बैठना असम्भव हो गया। बदन में खून तो छटाँक-भर था, मगर ऐसा उछलने लगा था कि बैठने नहीं देता था।

ऐन उसी वक्त कोठरी में सन्तू आ पहुँचा और खाट पर बैठकर मंगलसेन के हाथ में से चिलम लेते हुए बोला, ''तुम्हें सगाई पर नहीं ले जायेंगे, चाचा।''

चाचा मंगलसेन के बदन में सिर से पाँव तक लरजिश हुई। पर यह सोचकर कि सन्तू खिलवाड़ कर रहा है, बोला, ''बड़ों के साथ मजाक नहीं किया करते, कई बार कहा। मुझे नहीं ले जायेंगे, तो क्या तुम्हें ले जायेंगे?''

''किसी को भी नहीं ले जायेंगे। वीरजी कहते हैं, सगाई डलवाने सिर्फ बाबूजी जायेंगे और कोई नहीं जायेगा।''

''वीरजी आये हैं?'' चाचा मंगलसेन के बदन में फिर लरजिश हुई और दिल धक-धक करने लगा। सन्तू घर का पुराना नौकर था, क्या मालूम ठीक ही कहता हो।

''ऊपर चलो, सब लोग खाना खा रहे हैं।'' सन्तू ने चिलम के दो कश लगाये, फिर चिलम को ताक पर रखा और बाहर जाने लगा। दरवाजे के पास पहुँचकर उसने फिर एक बार घूमकर हँसते हुए कहा। ''तुम्हें नहीं ले जायेंगे, चाचा, लगा लो शर्त, दो-दो रुपये की शर्त लगती है?''

''बस, बक-बक नहीं कर, जा अपना काम देख!''

ऊपर रसोईघर में सचमुच बहस चल रही थी। सन्तू ने गलत नहीं कहा था। रसोईघर में एक तरफ, दीवार के साथ पीठ लगाये बाबूजी बैठे खाना खा रहे थे। चौके के ऐन बीच में वीरजी और मनोरमा, भाई-बहन, एक साथ, एक ही थाली में खाना खा रहे थे। माँ जी चूल्हे के सामने बैठी पराठे सेंक रही थीं। माँ बेटे को समझा रही थी, ''यही मौके खुशी के होते हैं, बेटा! कोई पैसे का भूखा नहीं होता। अकेले तुम्हारे पिताजी सगाई डलवाने जायेंगे तो समधी भी इसे अपना अपमान समझेंगे।''

''मैंने कह दिया, माँ मेरी सगाई सवा रुपये में होगी और केवल बाबूजी सगाई डलवाने जायेंगे। जो मंजूर नहीं हो तो अभी से...''

''बस-बस, आगे कुछ मत कहना।'' माँ ने झट से टोकते हुए कहा। फिर क्षुब्ध होकर बोली, ''जो तुम्हारे मन में आये करो। आजकल कौन किसकी सुनता है। छोटा-सा परिवार और इसमें भी कभी कोई काम ढंग से नहीं हुआ। मुझे तो पहले ही मालूम था, तुम अपनी करोगे।''

''अपनी क्यों करेगा, मैं कान खींचकर इसे मनवा लूँगा।'' बाबूजी ने बेटे की ओर देखते हुए बड़े दुलार से कहा।

पर वीरजी खीझ उठे, ''क्या आप खुद नहीं कहा करते थे कि ब्याह-शादियों पर पैसे बर्बाद नहीं करना चाहिए। अब अपने बेटे की सगाई का वक्त आया तो सिद्धान्त ताक पर रख दिये। बस, आप अकेले जाइये और सवा रुपया लेकर सगाई डलवा लाइये।''

''वाह जी, मैं क्यों न जाऊँ? आजकल बहनें भी जाती हैं।'' मनोरमा सिर झटककर बोली, ''वीरजी, तुम इस मामले में चुप रहो।''

"सुनो, बेटा, न तुम्हारी बात, न मेरी", बाबूजी बोले, "केवल पाँच या सात सम्बन्धी लेकर जायेंगे। कहोगे तो बाजा भी नहीं होगा। वहाँ उनसे कुछ माँगेंगे भी नहीं। जो समधी ठीक समझें दे दें, हम कुछ नहीं बोलेंगे।"

इस पर वीरजी तुनककर कुछ कहने जा ही रहे थे, जब सीढ़ियों पर मंगलसेन के कदमों की आवाज आयी।

"अच्छा, अभी मंगलसेन से कोई बात नहीं करना। खाना खा लो, फिर बातें होती रहेंगी।" माँजी ने कहा।

पचास बरस की उम्र के मंगलसेन के बदन के सभी चूल ढीले पड़ गये थे। जब चलता तो उचक-उचककर हिचकोले खाता हुआ और जब सीढ़ियाँ चढ़ता तो पाँव घसीटकर, बार-बार छड़ी ठकोरता हुआ। जब भी वह सड़क पर जा रहा होता, मोड़ पर का साइकिलवाला दूकानदार हमेशा मंगलसेन से मजाक करके कहता, "आओ, मंगलसेनजी, पेच कस दें।" और जवाब में मंगलसेन हमेशा उसे छड़ी दिखाकर कहता, "अपने से बड़ों के साथ मजाक नहीं किया करते। तू अपनी हैसियत तो देख!"

मंगलसेन को अपनी हैसियत पर बड़ा नाज था। किसी जमाने में फौज में रह चुका था, इस कारण अब भी सिर पर खाकी पगड़ी पहनता था। खाकी रंग सरकारी रंग है, पटवारी से लेकर बड़े-बड़े इन्सपेक्टर तक सभी खाकी पगड़ी पहनते हैं। इस पर ऊँचा खानदान और शहर के धनी-मानी भाई के घर में रहना, ऐंठता नहीं तो क्या करता?

दहलीज पर पहुँचकर मंगलसेन ने अन्दर झाँका। खिचड़ी मूँछें सस्ता तम्बाकू पीते रहने के कारण पीली हो रही थीं। घनी भौंहों के नीचे दायीं आँख कुछ ज्यादा खुली हुई और बायीं आँख कुछ ज्यादा सिकुड़ी हुई थी सामने के तीन दाँत गायब थे।

"भौजाईजी, आप रोटियाँ सेंक रही हैं? नौकरों के होते हुए..."

"आओ मंगलसेनजी, आओ, जरा देखो तो यहाँ कौन बैठा है!"

"नमस्ते, चाचाजी!" वीरजी ने बैठे-बैठे कहा।

"उठकर चाचाजी को पालागन करो, बेटा, तुम्हें इतनी भी अक्ल नहीं है!" बाबूजी ने बेटे को झिड़ककर कहा।

वीरजी उठ खड़े हुए और झुककर चाचाजी को पालागन किया। चाचाजी झेंप गये।

कोने में बैठा सन्तू, जो नल के पास बर्तन मलने लगा था, कन्धे के पीछे मुँह छिपाये हँसने लगा।

"जीते रहो, बड़ी उम्र हो!" मंगलसेन ने कहा और वीरजी के सिर पर इस गम्भीरता से हाथ फेरा कि वीरजी के बाल बिखर गये।

मनोरमा खिलखिलाकर हँसने लगी।

"सगाईवाले दिन वीरजी खुद आ गये हैं। वाह-वाह!"

"बैठ जा, बैठ जा, मंगलसेन, बहुत बातें नहीं करते," बाबूजी बोले।

"आप मेरी जगह पर बैठ जाइए, चाचाजी, मैं दूसरी चटाई ले लूँगा।" वीरजी ने कहा।

"दो मिनट खड़ा रहेगा तो मंगलसेन की टाँगें नहीं टूट जायेंगी।" बाबूजी बोले, "यह खुद भी चटाई पकड़ सकता है। जाओ मंगलसेन, जरा टाँगें हिलाओ और अपने लिए चटाई उठा लाओ।"

माँजी ने दाँत तले होंठ दबाया और घूर-घूरकर बाबूजी की ओर देखने लगीं, "नौकरों के सामने तो मंगलसेन के साथ इस तरह रूखाई से नहीं बोलना चाहिए। आखिर तो खून का रिश्ता है, कुछ लिहाज करना चाहिए।"

मंगलसेन छज्जे पर से चटाई उठाने गया। दरवाजे के पास पहुँचकर, नौकर की पीठ के पीछे से गुजरने लगा, तो सन्तू ने हँसकर कहा,"वहाँ नहीं है, चाचाजी, मैं देता हूँ, ठहरो। एक ही बर्तन रह गया है, मलकर उठता हूँ।"

सन्तू निश्चिन्त बैठा, कन्धों के बीच सिर झुकाये बर्तन मलता रहा।

मनोरमा घुटनों के ऊपर अपनी ठुड्डी रखे, दोनों हाथों से अपने पैरों की उँगलियाँ मलती हुई, कोई वार्ता सुनाने लगी, "दूकानदारों की टाँगें कितनी छोटी होती हैं, भैया, क्या तुमने कभी देखा है?" अपने भाई की ओर कनखियों से देखकर हँसती हुई बोली, "जितनी देर वे गद्दी पर बैठे रहे, ठीक लगते हैं, पर जब उठें तो सहसा छोटे हो जाते हैं, इतनी छोटी-छोटी टाँगें। आज मैं एक दूकान पर सूटकेस लेने गयी..."

"उठो, सन्तू चटाई ला दो। हर वक्त का मजाक अच्छा नहीं होता।" चाचा मंगलसेन सन्तू से आग्रह करने लगा।

"वहाँ खड़े क्या कर रहे हो, मंगलसेन? चलो, इधर आओ! उठ सन्तू, चटाई ले आ, सुनता नहीं तू? इसे कोई बात कहो तो कान में दबा जाता है!" माँ बोली।

सन्तू की पीठ पर चाबुक पड़ी। उसी वक्त उठा और जाकर चटाई ले आया। माँजी ने चूल्हे के पास दीवार के साथ रखी दो थालियों में से एक थाली उठाकर मंगलसेन के सामने रख दी। मैले रूमाल से हाथ पोंछते हुए मंगलसेन चटाई पर बैठ गया। थाली में आज तीन भाजियाँ रखी थीं, चपातियाँ खूब गरम-गरम थीं।

सहसा बाबूजी ने मंगलसेन से पूछा, "आज रामदास के पास गये थे? किराया दिया उसने या नहीं?"

मंगलसेन खुशी में था। उसी तरह चहककर बोला, "बाबूजी, वह अफीमची कभी घर पर मिलता है, कभी नहीं। आज घर पर था ही नहीं।"

"एक थप्पड़ मैं तेरे मुँह पर लगाऊँगा, तुमने क्या मुझे बच्चा समझ रखा है?"

रसोईघर में सहसा सन्नाटा छा गया। माँ ने होंठ भींच लिये। मंगलसेन की पुलकन सिहरन में बदल गयी। उसका दायाँ गाल हिलने-सा लगा, जैसे चपट पड़ने पर सचमुच हिलने लगता है।

"छह महीने का किराया उस पर चढ़ गया है, तू करता क्या रहता है?"

नुक्कड़ में बैठे सन्तू के भी हाथ बर्तनों को मलते-मलते रुक गये। भाई-बहन फर्श की ओर देखने लगे। हाय बेचारा, मनोरमा ने मन-ही-मन कहा और अपने पैरों की उँगलियों की ओर देखने लगी। वीरजी का खून खौल उठा। चाचाजी गरीब हैं, इसीलिए इन्हें इतना दुत्कारा जाता है...

"और पराठा डालूँ, मंगलसेनजी?" माँ ने पूछा। मंगलसेन का कौर अभी गले में ही अटका हुआ था। दोनों हाथों से थाली को ढँकते हुए हड़बड़ाकर बोला, "नहीं, भौजाई जी, बस जी!"

"जब मेरे यहाँ रहते यह हाल है, तो जब मैं कभी बाहर जाऊँगा तो क्या हाल होगा? मैं चाहता हूँ, तू कुछ सीख जाये और किराये का सारा काम सँभाल ले। मगर छह महीने तुझे यहाँ आये हो गये, तूने कुछ नहीं सीखा।"

इस वाक्य को सुनकर मंगलसेन के सर्द लहू में थोड़ी-सी हरारत आयी।

"मैं आज ही किराया ले आऊँगा, बाबूजी! न देगा तो जायेगा कहाँ? मेरा भी नाम मंगलसेन है!"

"मुझे कभी बाहर जाना पड़ा, तो तुम्हीं को काम सँभालना है। नौकर कभी किसी को कमाकर नहीं खिलाते। जमीन-जायदाद का काम करना हो तो सुस्ती से काम नहीं चलता। कुछ हिम्मत से काम लिया करो।"

मंगलसेन के बदन में झुरझुरी हुई। दिल में ऐसा हुलास उठा कि जी चाहा पगड़ी उतारकर बाबूजी के कदमों पर रख दे। हुमककर बोला, "चिन्ता न करो जी, मेरे होते यहाँ चिड़ी फड़क जाये तो कहना? डर किस बात का? मैंने लाम देखी है, बाबूजी! बसरे की लड़ाई में कप्तान रस्किन था हमारा। कहने लगा, देखो मंगलसेन, हमारी शराब की बोतल लारी में रह गयी है वह हमें चाहिए। उधर मशीनगन चल रही थी। मैंने कहा, अभी लो, साहब! और अकेले मैं वहाँ से बोतल निकाल लाया। ऐसी क्या बात है..."

मंगलसेन फिर चहकने लगा। मनोरमा मुसकरायी और कनखियों से अपने भाई की ओर देखकर धीमे से बोली, "चाचाजी की दुम फिर हिलने लगी!"

मंगलसेन खाना खा चुका था। उठते हुए हँसकर बोला, "तो चार बजे चलेंगे न सगाई डलवाने?"

"तू जा, अपना काम देख, जो जरूरत हुई तो तुम्हें बुला लेंगे।" बाबूजी बोले।

चाचा मंगलसेन का दिल धक-से रह गया। सन्तू शायद ठीक ही कहता था, मुझे नहीं ले चलेंगे। उसे रुलाई-सी आ गयी, मगर फिर चुपचाप उठ खड़ा हुआ, बाहर जाकर जूते पहने, छड़ी उठायी और झूलता हुआ सीढ़ियों की ओर जाने लगा।

वीरजी का चेहरा क्रोध और लज्जा से तमतमा उठा। मनोरमा को डर लगा कि बात और बिगड़ेगी, वीरजी कहीं बाबूजी से न उलझ बैठें। माँजी को भी बुरा लगा। धीमे से कहने लगीं, "देखो जी, नौकरों के सामने मंगलसेन की इज्जत-आबरू का कुछ तो ख्याल रखा करो। आखिर तो खून का रिश्ता है। कुछ तो मुँह-मुलाहिजा रखना चाहिए। दिन-भर आपका काम करता है।"

"मैंने उसे क्या कहा है," बाबूजी ने हैरान होकर पूछा।

"यों रुखाई के साथ नहीं बोलते। वह क्या सोचता होगा? इस तरह बेआबरूई किसी की नहीं करनी चाहिए।"

"क्या बक रही हो? मैंने उसे क्या कहा है?" बाबूजी बोले फिर सहसा वीरजी की ओर घूरकर कहने लगे, "अब तू बोल, भाई, क्या कहता है? कोई भी काम ढंग से करने देगा या नहीं?"

"मैंने कह दिया, पिताजी, आप अकेले जाइए और सवा रुपये लेकर सगाई डलवा लाइए।"

रसोईघर में चुप्पी छा गयी। इस समस्या का कोई हल नजर नहीं आ रहा था। वीरजी टस-से-मस नहीं हो रहे थे।

सहसा बाबूजी ने सिर पर पगड़ी उतारी और सिर आगे को झुकाकर बोले, "कुछ तो इन सफेद बालों का ख्याल कर! क्यों हमें रुसवा करता है?"

वीरजी गुस्से में थे। चाचा मंगलसेन गरीब है, इसीलिए उसके साथ ऐसा बुरा व्यवहार किया जाता है। यह बात उसे खल रही थी। मगर जब बाबूजी ने पगड़ी उतारकर अपने सफेद बालों की दुहाई दी तो सहम गया। फिर भी साहस करके बोला, "यदि

आप अकेले नहीं जाना चाहते तो चाचाजी को साथ ले जाइए। बस, दो जने चले जायें।''

''कौन-से चाचा को?'' माँजी ने पूछा।

''चाचा मंगलसेन को।''

कोने में बैठे सन्तू ने भी हैरान होकर सिर उठाया। माँ झट से बोली, ''हाय-हाय बेटा, शुभ-शुभ बोलो! अपने रईस भाइयों को छोड़कर इस मरदूद को साथ ले जायें? सारा शहर थू-थू करेगा।!''

''माँजी, अभी तो आप कह रही थीं, खून का रिश्ता है। किधर गया खून का रिश्ता? चाचाजी गरीब हैं इसीलिए?''

''मैं कब कहती हूँ, यह न जाये! यह भी जाये, लेकिन और सम्बन्धी भी तो जायें। अपने धनी-मानी सम्बन्धियों को छोड़ दें और इस बहुरूपिये को साथ ले जायें, क्या यह अच्छा लगेगा?''

''तो फिर बाबूजी अकेले जायें।'' वीरजी परेशान हो उठे। ''मैंने जो कहना था कह दिया! अब जो तुम्हारे मन में आये करो, मेरा इससे कोई वास्ता नहीं।'' और उठकर रसोईघर से बाहर चले गये।

बेटे के यों उठ जाने से रसोईघर में चुप्पी छा गयी। माँ और बाप दोनों का मन खिन्न हो उठा। ऐसा शुभ दिन हो, बेटा घर पर आये और यों तकरार होने लगे। माँ का दिल टूक-टूक होने लगा। उधर बाबूजी का क्रोध बढ़ रहा था। उनका जी चाहता था कह दें, जा फिर मैं भी नहीं जाऊँगा। भेज दे जिसको भेजना चाहता है। मगर यह वक्त झगड़े को लम्बा करने का न था।

सबसे पहले माँ ने हार मानी, ''क्या बुरा कहता है! आजकल के लड़के माँ-बाप के हजारों रुपये लुटा देते हैं। इसके विचार तो कितने ऊँचे हैं! यह तो सवा रुपये में सगाई करना चाहता है। तुम मंगलसेन को ही अपने साथ ले जाओ। अकेले जाने से तो अच्छा है।''

बाबूजी बड़बड़ाये, बहुत बोले, मगर आखिर चुप हो गये। बच्चों के आगे किस माँ-बाप की चलती है? और चुपचाप उठकर अपने कमरे में जाने लगे।

''जा सन्तू, मंगलसेन को कह, तैयार हो जाये।'' माँजी ने कहा।

मनोरमा चहक उठी और भागी हुई वीरजी को बताने चली गयी कि बाबूजी मान गये हैं।

मंगलसेन को जब मालूम हुआ कि अकेला वही बाबूजी के साथ जायेगा, तो कितनी ही देर तक वह कोठरी में उचकता और चक्कर लगाता रहा। बदन का छटाँक-भर खून फिर उछलने लगा। जी चाहा कि सन्तू से उसी वक्त शर्त के दो रुपये रखवा ले। क्यों न हो, आखिर मुझसे बड़ा सम्बन्धी है भी कौन, मुझे नहीं ले जायेंगे तो किसे ले जायेंगे? मैं और बाबूजी ही इस घर के कर्त्ता-धर्त्ता हैं और कौन है? जितना ही अधिक वह इस बात पर सोचता, उतना ही अधिक उसे अपने बड़प्पन पर विश्वास होने लगता। आखिर उसने कोने में रखी ट्रंकी को खोला और कपड़े बदलने लगा।

घण्टा-भर बाद जब मंगलसेन तैयार होकर आँगन में आया, तो माँजी का दिल बैठ गया—यह सूरत लेकर समधियों के घर जायेगा? मंगलसेन के सिर पर खाकी पगड़ी, नीचे मैली कमीज के ऊपर खाकी फौजी कोट, जिसके धागे निकल रहे थे और नीचे धारीदार पाजामा और मोटे-मोटे काले बूट। माँ को रुलाई आ गयी। पर यह अवसर रोने का नहीं था। अपनी रुलाई को दबाती हुई वह आगे बढ़ आयी।

''मनोरमा, जा भाई की आलमारी में से एक धुला पाजामा निकाल ला।'' फिर बाबूजी के कमरे की ओर मुँह करके बोली, ''सुनते हो जी, अपनी एक पगड़ी इधर भेज देना मंगलसेन के पास ढंग से पगड़ी नहीं है।''

मंगलसेन का कायाकल्प होने लगा। मनोरमा पाजाम ले आयी। सन्तू बूट पालिस करने लगा। आँगन के ऐन बीचोंबीच एक कुर्सी पर मंगलसेन को बिठा दिया गया और परिवार के लोग उसके आसपास भाग-दौड़ करने लगे। कहीं से मनोरमा की दो सहेलियाँ भी आ पहुँची थीं। मंगलसेन पहले से भी छोटा लग रहा था। नंगा सिर, दोनों हाथ घुटनों के बीच जोड़े वह आगे की ओर झुककर बैठा था। बार-बार उसे रोमांच हो रहा था...

मंगलसेन का स्वप्न सचमुच साकार हो उठा। समधियों के घर में उसकी वह आवभगत हुई कि देखते बनता था। मंगलसेन आरामकुर्सी पर बैठा था और पीछे एक आदमी खड़ा पंखा झल रहा था। समधी आगे-पीछे, हाथ बाँधे घूम रहे थे। एक आदमी ने सचमुच झुककर बड़े आग्रह से कहा, ''और दूध लाऊँ, चाचाजी? थोड़ा-सा और?''

और जवाब में मंगलसेन ने कहा, ''हाँ, आधा गिलास ले आओ।''

समधियों के घर की ऐसी सज-धज कि मंगलसेन दंग रह गया और उसका सिर हवा में तैरने लगा। आवाज ऊँची करके बोला, ''लड़की कुछ पढ़ी-लिखी भी है या नहीं? हमारा बेटा तो एम०ए० पास है?''

"जी, आपकी दया से लड़की ने इसी साल बी०ए० पास किया है।" "घर का काम-धन्धा भी कुछ जानती है या सारा वक्त किताबें ही पढ़ती रहती है?"

"जी, थोड़ा-बहुत जानती है।"

"थोड़ा-बहुत क्यों?"

आखिर सगाई डलवाने का वक्त आया। समधी बादामों से भरे कितने ही थाल लाकर बाबूजी और मंगलसेन के सामने रखने लगे। बाबूजी ने हाथ बाँध दिये, "मैं तो केवल एक रुपया और चार आने लूँगा। मेरा इन चीजों में विश्वास नहीं है। हमें अब पुरानी रस्मों को बदलना चाहिए। आप सलामत रहें, आपका सवा रुपया भी मेरे लिए सवा लाख के बराबर है।"

"आपको किस चीज की कमी है, लालाजी। पर हमारा दिल रखने के लिए ही कुछ स्वीकार कर लीजिए।"

बाबूजी मुसकराये, "नहीं महाराज, आप मुझे मजबूर न करें। यह उसूल की बात है। मैं तो सवा रुपया ही लेकर जाऊँगा। आपका सितारा बुलन्द रहे! आपकी बेटी हमारे घर आयेगी, तो साक्षात् लक्ष्मी विराजेगी!"

मंगलसेन के लिए चुप रहना असम्भव हो रहा था। हुमककर बोला, "एक बार कह जो दिया जी कि हम सवा रुपया ही लेंगे। आप बार-बार तंग क्यों करते हैं?"

बेटी के पिता हँस दिये और पास खड़े अपने किसी सम्बन्धी के कान में बोले, "लड़के के चाचा हैं, दूर के। घर में टिके हुए हैं। लालाजी ने आसरा दे रखा है।"

आखिर समधी अन्दर से एक थाल ले आये, जिस पर लाल रंग का रेशमी रूमाल बिछा था और बाबूजी के सामने रख दिया। बाबूजी ने रूमाल उठाया, तो नीचे चाँदी के थाल में चाँदी की तीन चमचम करती कटोरियाँ रखी थीं, एक में केसर, दूसरी में रांगला धागा, तीसरी में एक चमकता चाँदी का रुपया और चमकती चवन्नी। इसके अलावा तीन कटोरियों में तीन छोटे-छोटे चाँदी के चम्मच रखे थे।

"आपने आखिर अपनी ही बात की," बाबूजी ने हँसकर कहा, "मैं तो केवल सवा रुपया लेने आया था..." मगर थाल स्वीकार कर लिया और मन-ही-मन कटोरियों, थाल और चम्मचों का मूल्य आँकने लगे।

मनोरमा और उसकी सहेलियाँ छज्जे पर खड़ी थीं जब दोनों भाई सड़क पर आते दिखायी दिये। मंगलसेन के कन्धे पर थाल था, लाल रंग के रूमाल से ढँका हुआ और आगे-आगे बाबूजी चले आ रहे थे।

वीरजी अब भी अपने कमरे में थे और पलँग पर लेटे किसी नावेल के पन्नों में अपने मन को लगाने का विफल प्रयास कर रहे थे। उनका माथा थका हुआ था, मगर हृदय धूमिल भावनाओं से उद्वेलित होने लगा था। क्या प्रभा मेरे लिए भी कोई सन्देश भेजेगी? सवा रुपये में सगाई डलवाने के बारे में वह क्या सोचती होगी? मन-ही-मन तो जरूर मेरे आदर्शों को सराहती होगी। मैंने एक गरीब आदमी को अपनी सगाई डलवाने के लिए भेजा। इससे अधिक प्रत्यक्ष प्रमाण मेरे आदर्शों का क्या हो सकता है?

"लाख-लाख बधाइयाँ, भौजाईजी!" घर में कदम रखते ही मंगलसेन ने आवाज लगायी।

मनोरमा और उसकी सहेलियाँ भागती हुई जंगले पर आ गयीं। बाबूजी गम्भीर मुद्रा बनाये, आँगन में आये और छड़ी कोने में रखकर अपने कमरे में चले गये।

मनोरमा भागती हुई नीचे गयी और झपटकर थाल चाचा मंगलसेन के हाथ से छीन लिया।

"कैसी पगली है! दो मिनट इन्तजार नहीं कर सकती।"

"वाह जी, वाह!" मनोरमा ने हँसकर कहा, "बाबूजी की पगड़ी पहन ली तो बाबू जी ही बन बैठे हैं! लाइये, मुझे दीजिये। आपका काम पूरा हो गया।"

माँजी की दोनों बहनें जो इस बीच आ गयी थीं, माँजी से गले मिल-मिलकर बधाई देने लगीं। आवाज सुनकर वीरजी भी जंगले पर आ खड़े हुए और नीचे आँगन का दृश्य देखने लगे। थाल पर रखे लाल रूमाल को देखते ही उनका रोम-रोम पुलकित हो उठा। सहसा ही वह ससुराल की चीजों से गहरा लगाव महसूस करने लगे। इस रूमाल को जरूर प्रभा ने अपने हाथ से छुआ होगा। उनका जी चाहा कि रूमाल को हाथ में लेकर चूम लें। इस भेंट को देखकर उनका मन प्रभा से मिलने के लिए बेताब होने लगा।

माँजी ने थाल पर से रूमाल उठाया। चमकती कटोरियाँ, चमकता थाल, बीच में रखे चम्मच। वीरजी को महसूस हुआ, जैसे प्रभा ने अपने गोरे-गोरे हाथों से इन चीजों को करीने से सजाकर रखा होगा।

"पानी पिलाओ, सन्तू", चाचा मंगलसेन ने आँगन में कुर्सी पर बैठते हुए, टाँग के ऊपर टाँग रखकर, सन्तू को आवाज लगायी।

इतने में माँजी की याद आयी, "तीन कटोरियाँ और दो चम्मच? यह क्या हिसाब हुआ? क्या तीन चम्मच नहीं दिये समधियों ने?" फिर बाबूजी के कमरे की ओर मुँह करके बोलीं, "अजी सुनते हो! तुम भी कैसे हो, आज के दिन भी कोई अन्दर जा बैठता है?"

"क्या है?" बाबूजी ने अन्दर से ही पूछा।

"कुछ बताओ तो सही, समधियों ने क्या कुछ दिया है?"

"बस, थाली में जो कुछ है वही दिया है, तेरे बेटे ने मना जो कर दिया था।"

"क्या तीन कटोरियाँ थीं और दो चम्मच थे?"

"नहीं तो, चम्मच भी तीन थे।"

"चम्मच तो यहाँ सिर्फ दो रखे हैं।"

"नहीं-नहीं, ध्यान से देखो, जरूर तीन होंगे। मंगलसेन से पूछो, वही थाल उठाकर लाया था।"

"मंगलसेनजी, तीसरा चम्मच कहाँ है?"

मंगलसेन सन्तू को सगाई का ब्योरा दे रहा था। समधी हमारे सामने हाथ बाँधे यों खड़े थे, जैसे नौकर हों। लड़की बड़ी सुशील है, बड़ी सलीके वाली, बी०ए० पास है, सीना-पिरोना भी जानती है..."

'मंगलसेनजी, तीसरा चम्मच कहाँ है?"

"कौन-सा चम्मच? वहीं थाल में होगा।" मंगलसेन ने लापरवाही से जवाब दिया।

"थाल में तो नहीं है।"

"तो उन्होंने दो ही चम्मच दिये होंगे। बाबूजी ने थाल लिया था।"

"हमें बेवकूफ बना रहे हो, मंगलसेनजी, तुम्हारे भाई कह रहे हैं तीन चम्मच थे!"

इतने में बाबूजी की गरज सुनायी दी, "इसीलिए मेरे साथ गये थे कि चम्मच गवाँ आओगे? कुछ नहीं तो पाँच-पाँच रुपये का एक-एक चम्मच होगा।

मंगलसेन ने उसी लापरवाही से कुर्सी पर से उठकर कहा, "मैं अभी जाकर पूछ आता हूँ। इसमें क्या है? हो सकता है, उन्होंने दो ही चम्मच रखे हों।"

"वहाँ कहाँ जाओगे? बताओ चम्मच कहाँ है? सारा वक्त तो थाल पर रूमाल रखा रहा।"

"बाबूजी, थाल तो आपने लिया था, आपने चम्मच गिने नहीं थे?"

"मेरे साथ चालाकी करता है? बदजात! बता तीसरा चम्मच कहाँ है?"

माँजी चम्मच खो जाने पर विचलित हो उठी थीं। बहनों की ओर घूमकर बोलीं, "गिनी-चुनी तो समधियों ने चीजें दी हैं, उनमें से भी अगर कुछ खो जाय, तो बुरा तो आखिर लगता ही है!"

"कैसा ढीठ आदमी है, सुन रहा है और कुछ बोलता नहीं!" बाबूजी ने गरजकर कहा।

चम्मच खो जाने पर अचानक वीरजी को बेहद गुस्सा आ गया। प्रभा ने चम्मच भेजा और वह उन तक पहुँचा ही नहीं। प्रभा के प्रेम की पहली निशानी ही खो गयी। वीरजी सहसा आवेश में आ गये। वीरजी ने आव देखा न ताव, मंगलसेन के पास जाकर उसे दोनों कन्धों से पकड़कर झिंझोड़ दिया।

"आपको इसीलिए भेजा था कि आप चीजें गँवा आयें?"

सभी चुप हो गये। सकता-सा छा गया। वीरजी खिन्न-से महसूस करने लगे कि मुझसे यह क्या भूल हो गयी और झेंपकर वापस जाने लगे।

"तुम बीच में मत पड़ो, बेटा! अगर चम्मच खो गया है तो तुम्हारी बला से! सबका धर्म अपने-अपने साथ है। एक चम्मच से कोई अमीर नहीं बन जायेगा!"

"जेब तो देखो इसकी।" बाबूजी ने गरजकर कहा।

मौसियाँ झेंप गयीं और पीछे हट गयीं। पर मनोरमा से न रहा गया। झट आगे बढ़कर वह जेब देखने लगी। रसोईघर की दहलीज पर सन्तू हाथ में पानी का गिलास उठाये रुक गया और मंगलसेन की ओर देखने लगा। चाचा मंगलसेन खड़ा कभी एक का मुँह देख रहा था, कभी दूसरे का। वह कुछ कहना चाहता था, मगर मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल रहा था।

एक जेब में से मैला-सा रूमाल निकला, फिर बीड़ियों की गड्डी, माचिस, छोटा-सा पेन्सिल का टुकड़ा।

"इस जेब में तो नहीं है।" मनोरमा बोली और दूसरी जेब देखने लगी। मनोरमा एक-एक चीज निकालती और अपनी सहेलियों को दिखा-दिखाकर हँसती।

दायीं जेब में कुछ खनका। मनोरमा चिल्ला उठी, ''कुछ खनका है, इसी जेब में है, चोर पकड़ा गया! तुमने सुना, मालती?''

जेब में टूटा हुआ चाकू रखा था, जो चाबियों के गुच्छे से लगकर खनका था।

''छोड़ दो, मनोरमा! जाने दो, सबका धर्म अपने-अपने साथ है। आपसे चम्मच अच्छा नहीं है, मंगलसेनजी, लेकिन यह सगाई की चीज थी।''

मंगलसेन की साँस फूलने लगी और टाँगें काँपने लगीं, लेकिन मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल पा रहा था।

''दोनों कान खोलकर सुन ले, मंगलसेन!'' बाबूजी ने गरजकर कहा, ''मैं तेरे से पाँच रुपये चम्मच के ले लूँगा, इसमें मैं कोई लिहाज नहीं करूँगा।''

मंगलसेन खड़े-खड़े गिर पड़ा।

''बधाई, बहनजी!'' नीचे आँगन में से तीन-चार स्त्रियों की आवाज एक साथ आ गयी।

मंगलसेन गिरा भी अजीब ढंग से। धम्म से जमीन पर जो पड़ा तो उकड़ूँ हो गया, और पगड़ी उतरकर गले में आ गयी। मनोरमा अपनी हँसी रोके न रोक सकी।

''देखो जी, कुछ तो खयाल करो। गली-मुहल्ला सुनता होगा। इतनी रुखाई से भी कोई बोलता है!'' माँजी ने कहा, फिर घबराकर सन्तू से कहने लगीं, ''इधर आओ सन्तू, और इन्हें छज्जे पर लिटा आओ।''

वीरजी फिर खिन्न-सा अनुभव करते हुए अपने कमरे में चले गये। मैंने जल्दबाजी की, मुझे बीच में नहीं पड़ना चाहिए था। इन्होंने चम्मच कहाँ चुराया होगा, जरूर कहीं गिर गया होगा।

बाबूजी नीचे अपने कमरे में चले गये। शीघ्र ही घर में ढोलक बजने की आवाज आने लगी। मनोरमा और उसकी सहेलियाँ आँगन में कालीन बिछवाकर बैठ गयीं। ढोलक की आवाज सुनकर पड़ोसिनें घर में बधाई देने आने लगीं।

ऐन उसी वक्त गलीवाले दरवाजे के पास एक लड़का आ खड़ा हुआ। संकोचवश वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि अन्दर जाय या वहीं खड़ा रहे। मनोरमा ने देखते ही पहचान लिया कि प्रभा का भाई, वीरजी का साला है। भागी हुई उसके पास जा पहुँची और शरारत से उसके सिर पर हाथ फेरने लगी।

''आओ, बेटाजी, अन्दर आओ, तुम यहाँ पड़ोस में रहते हो न?''

''नहीं, मैं प्रभा का भाई हूँ।''

''मिठाई खाओगे?'' मनोरमा ने फिर शरारत से कहा और हँसने लगी।

लड़का सकुचा गया।

''नहीं, मैं तो यह देने आया हूँ,'' उसने कहा और जाकेट की जेब में से एक चमकता, सफेद चम्मच निकाला और मनोरमा के हाथ में देकर उन्हीं कदमों वापस लौट गया।

''हाय, चम्मच मिल गया! माँजी चम्मच मिल गया!''

पर माँजी सम्बन्धियों से घिरी खड़ी थीं। मनोरमा रुक गयी और माँ से नजरें मिलाने की कोशिश करते हुए, हाथ ऊँचा करके चम्मच हिलाने लगी। चम्मच को कभी नाक पर रखती, कभी हवा में हिलाती, कभी ऊँचा फेंककर हाथ में पकड़ती, मगर माँजी कुछ समझ ही नहीं रही थीं....

छज्जे पर सन्तू ने मंगलसेन को खाट पर लिटाया और मुँह पर पानी का छींटा देते हुए बोला, ''तुम शर्त जीत गये। बस तनख्वाह मिलने पर दो रुपये नकद तुम्हारी हथेली पर रख दूँगा।''

अभ्यास प्रश्न

1. 'खून का रिश्ता' कहानी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
2. 'खून का रिश्ता' कहानी के आधार पर 'मंगलसेन' का चरित्र-चित्रण कीजिए।
3. 'खून का रिश्ता' कहानी के आधार पर 'वीरजी' का चरित्र-चित्रण कीजिए।
4. 'खून का रिश्ता' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए। **[2016 SA, SE, SG, 17MF, 19CR 20 ZF,]**
5. 'खून का रिश्ता' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

6. कहानी के तत्त्वों के आधार पर 'खून का रिश्ता' कहानी की समीक्षा कीजिए। **[2017 MD, 19 CL, CO, 20 ZE]**
7. 'खून का रिश्ता' कहानी की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए और उपयुक्त उदाहरण दीजिए।
8. कहानी-कला की दृष्टि से 'खून का रिश्ता' की समीक्षा कीजिए। **[2020 ZC, ZD]**
9. 'खून का रिश्ता' कहानी के आधार पर 'सन्तू' का चरित्र-चित्रण कीजिए।
10. प्रस्तुत कहानी को आधार मानकर भीष्म साहनी की कहानी-कला की विशेषताएँ लिखिए।
11. कहानी के प्रमुख तत्त्वों के आधार पर 'खून का रिश्ता' कहानी की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
12. 'खून का रिश्ता' कहानी के नामकरण की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।
13. 'खून का रिश्ता' कहानी की कथावस्तु अपने शब्दों में लिखिए।
14. उद्देश्य की दृष्टि से 'खून का रिश्ता' की समीक्षा कीजिए।
15. 'खून का रिश्ता' कहानी की विषय-वस्तु संक्षेप में लिखिए।
16. 'खून का रिश्ता' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्रांकन कीजिए।
17. 'खून का रिश्ता' कहानी के प्रमुख पात्र की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
18. 'खून का रिश्ता' कहानी के तथ्यों को प्रस्तुत कीजिए। **[2108 AA]**
19. कहानी के तत्त्वों के आधार पर 'खून का रिश्ता' कहानी का वर्णन कीजिए।
20. 'खून का रिश्ता' कहानी के तथ्यों पर प्रकाश डालिए।

2 फणीश्वरनाथ 'रेणु'

व्यक्तित्व

फणीश्वरनाथ 'रेणु' का जन्म बिहार प्रान्त के पूर्णिया जिले में स्थित औराही हिंगना ग्राम में सन् 1921 ई० में हुआ था। आपने इण्टर तक शिक्षा प्राप्त की और स्वतन्त्रता-आन्दोलनों में भाग लेते रहे। समाजवादी विचारकों का इन पर स्पष्ट प्रभाव था। ये समाजवादी दल के सक्रिय सदस्य भी रहे। इनके लेखन पर बंगला भाषा और साहित्य का व्यापक प्रभाव है। रेणु जी 11 अप्रैल, 1977 को दिवंगत हुए।

कृतित्व

रेणु जी के कथा-संग्रह हैं—**'ठुमरी'** तथा **'आदिम रात्रि की महक'**। **'मैला आँचल'**, **'परती परिकथा'** तथा **'दीर्घतपा'** इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

कथा-शिल्प एवं भाषा शैली

रेणु आंचलिक कथाकार थे। प्रेमचन्द के बाद ग्रामीण वातावरण और उसकी समस्याओं को मार्मिकता और यथार्थता के साथ प्रस्तुत करनेवाले आप पहले साहित्यकार माने गये। प्रेमचन्द से आपकी विशेषता यह है कि जहाँ प्रेमचन्द को जनजीवन से केवल सहानुभूति थी, वहाँ रेणु ने उसके साथ आत्मीयता और तादात्म्य का सम्बन्ध स्थापित कर लिया। आपकी हैसियत दर्शक की न होकर भोक्ता की रही है। निम्न-मध्यवर्ग के जीवन को आपने विशेष रूप से अपनी कहानियों का विषय बनाया है। आपकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं—**'पान की बेगम', 'रसपिरिया', 'तीन बिंदियाँ'** आदि।

रेणु में संवेदना और निरीक्षण की अपूर्व शक्ति थी। हिन्दी कथा-जगत् में आपका उदय एक ऐतिहासिक घटना है। कथा में आंचलिकता का सन्निवेश तो आपका वैशिष्ट्य है ही, शिल्प के स्तर पर भी आपने रिपोर्ताज की शैली का उपयोग करके किस्सागोई को नयी दिशा दी है और उसका संस्कार किया है। इनकी कहानियों में सूक्ष्म ताने-बाने बुनने का अपूर्व कौशल लक्षित होता है। गहरी संवेदनशीलता और ध्वनि-चित्रात्मक सघन संगीतात्मकता आपकी कथा-शैली की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। प्रभाव-बिम्बों की योजना द्वारा कहानी के वातावरण को वास्तविक और चित्रोपम बनाने में आप सिद्धहस्त हैं। आपकी कहानियों का रचना-विधान औपन्यासिक कहा जा सकता है। उनमें पात्रों, घटनाओं और भाव-चित्रों का बाहुल्य हुआ करता है। कथा-तन्तुओं की बहुलता और उसके बिखराव को आप अत्यन्त सधे ढंग से एक विशेष बिन्दु अथवा मुहूर्त्त की ओर मोड़ देते हैं, जिसके फलस्वरूप कहानी का प्रभाव सघन, मार्मिक और स्थायी हो उठता है।

रेणु जी कहानी की भाषा-शैली को नयी दिशा प्रदान करनेवाले कथाकार थे। गाँव में बोले जानेवाले विकृत शब्दों, रूपों और देशज शब्दों का मुक्त प्रयोग आपकी भाषा की प्रधान विशेषता है। ग्रामीण मुहावरों और कहावतों के जीवन्त प्रयोग आपकी भाषा में देखे जा सकते हैं।

बिहार के ग्रामांचलों से निजी स्तर पर जुड़े होने के कारण आपकी कथा-भाषा में उनकी रोजमर्रा की शब्दावली बड़े सहज किन्तु व्यंजक रूप में घुल-मिल गयी है। आपकी प्रसिद्ध लम्बी कहानी, **'तीसरी कसम'** हिन्दी में लम्बी कहानियों की परम्परा का सूत्रपात करती है। उसका फिल्मांकन भी हो चुका है।

पंचलाइट

पिछले पन्द्रह महीने से दण्ड-जुर्माने के पैसे जमा करके महतो टोली के पंचों ने पेट्रोमेक्स खरीदा है इस बार, रामनवमी के मेले में। गाँव में सब मिलाकर आठ पंचायतें हैं। हरेक जाति की अलग-अलग 'सभाचट्टी' है। सभी पंचायतों में दरी, जाजिम, सतरंजी और पेट्रोमेक्स हैं। पेट्रोमेक्स, जिसे गाँववाले पंचलाइट कहते हैं।

पंचलाइट खरीदने के बाद पंचों ने मेले में ही तय किया—दस रुपये जो बच गये हैं, इनसे पूजा की सामग्री खरीद ली जाय—बिना नेमटेम के कल-कब्जेवाली चीज का पुन्याह नहीं करना चाहिए। अंग्रेज बहादुर के राज में भी पुल बनाने के पहले बलि दी जाती थी।

मेले से सभी पंच दिन-दहाड़े ही गाँव-लौटे, सबसे आगे पंचायत का छड़ीदार पंचलाइट का डिब्बा माथे पर लेकर और उसके पीछे सरदार, दीवान और पंच वगैरह। गाँव के बाहर ही ब्राह्मण-टोली के फुटंगी झा ने टोक दिया—कितने में लालटेन खरीद हुआ महतो?

देखते नहीं हैं, पंचलैट है! बामन टोली के लोग ऐसे ही बात करते हैं। अपने घर की ढिबरी को भी बिजली-बत्ती कहेंगे और दूसरों के पंचलैट को लालटेन!

टोले भर के लोग जमा हो गये। औरत-मर्द, बूढ़े-बच्चे सभी कामकाज छोड़कर दौड़े आये—चल रे चल! अपना पंचलैट आया है, पंचलैट! छड़ीदार अगनू महतो रह-रहकर लोगों को चेतावनी देने लगा—हाँ, दूर से, जरा दूर से! छू छा मत करो, ठेस न लगे।

सरदार ने अपनी स्त्री से कहा—साँझ को पूजा होगी, जल्द से नहा-धोकर चौका पीढ़ी लगाओ।

टोले की कीर्त्तन मण्डली के मूलगैन ने अपने भगतिया पच्छकों को समझाकर कहा—देखो, आज पंचलैट की रोशनी में कीर्त्तन होगा। बेताले लोगों से पहले ही कह देता हूँ, आज यदि आखर धरने में डेढ़-बेढ़ हुआ, तो दूसरे दिन से एकदम बैकाट!

औरतों की मण्डली में गुलरी काकी गोसाईं का गीत गुनगुनाने लगी। छोटे-छोटे बच्चों ने उत्साह के मारे बेवजह शोरगुल मचाना शुरू किया।

सूरज डूबने के एक घण्टा पहले ही टोले-भर के लोग सरदार के दरवाजे पर आकर खड़े हो गये—पंचलैट, पंचलैट!

पंचलैट के सिवा और कोई गप नहीं, कोई दूसरी बात नहीं। सरदार ने गुड़गुड़ी पीते हुए कहा—दूकानदार ने पहले सुनाया, पूरे पाँच कोड़ी पाँच रुपया। मैंने कहा कि दूकानदार साहेब, यह मत समझिए कि हम लोग एकदम देहाती हैं। बहुत-बहुत पंचलाइट देखा है। इसके बाद दूकानदार मेरा मुँह देखने लगा। बोला, लगता है आप जाति के सरदार हैं! ठीक है, जब आप सरदार होकर खुद पंचलैट खरीदने आये हैं तो जाइए, पूरे पाँच कोड़ी में आपको दे रहे हैं।

दीवानजी ने कहा—अलबत्ता चेहरा परखनेवाला दूकानदार है। पंचलैट का बक्सा दूकानदार का नौकर देना नहीं चाहता था। मैंने कहा, देखिए दूकानदार साहेब, बिना बक्सा पंचलैट कैसे ले जायेंगे? दूकानदार ने नौकर को डाँटते हुए कहा, क्यों रे! दीवानजी की आँख के आगे 'धुरखेल' करता है, दे दो बक्सा!

टोले के लोगों ने अपने सरदार और दीवान को श्रद्धा-भरी निगाहों से देखा। छड़ीदार ने औरतों की मण्डली में सुनाया—रास्ते में सन्न-सन्न बोलता था पंचलैट!

लेकिन.....ऐन मौके पर 'लेकिन' लग गया! रूदल साह बनिये की दूकान से तीन बोतल किरासन तेल आया और सवाल पैदा हुआ कि पंचलैट को जलायेगा कौन?

यह बात पहले किसी के दिमाग में नहीं आयी थी। पंचलैट खरीदने के पहले किसी ने न सोचा। खरीदने के बाद भी नहीं। अब पूजा की सामग्री चौके पर सजी हुई है, कीर्त्तनिया लोग ढोल-करताल खोलकर बैठे हैं और पंचलैट पड़ा हुआ है। गाँववालों ने आज तक कोई ऐसी चीज नहीं खरीदी, जिसमें जलाने-बुझाने का झंझट हो। कहावत है न, भाई रे, गाय लूँ? तो दुहे कौन? ..... लो मजा! अब इस कल-कब्जेवाली चीज को कौन बाले।

यह बात नहीं कि गाँव भर में कोई पंचलैट बालनेवाला नहीं। हरेक पंचायत में पंचलैट है। उसके जलानेवाले जानकार हैं। लेकिन सवाल है कि पहली बार नेम-टेम करके, शुभ लाभ करके, दूसरी पंचायत के आदमी की मदद से पंचलैट जलेगा? इससे तो अच्छा है कि पंचलैट पड़ा रहे। जिन्दगी भर ताना कौन सहे! बात-बात में दूसरे टोले के लोग कूट करेंगे—तुम लोगों का पंचलैट पहली बार दूसरे के हाथ से....! न, न! पंचायत की इज्जत का सवाल है। दूसरे टोले के लोगों से मत कहिए।

चारों ओर उदासी छा गयी। अँधेरा बढ़ने लगा। किसी ने अपने घर में आज ढिबरी भी नहीं जलाई थी।.....आज पंचलैट के सामने ढिबरी कौन बालता है!

सब किये-कराये पर पानी फिर रहा था। सरदार, दीवान और छड़ीदार के मुँह में बोली नहीं। पंचों के चेहरे उतर गये थे। किसी ने दबी आवाज में कहा—कल-कब्जेवाली चीज का नखरा बहुत बड़ा होता है।

एक नौजवान ने आकर सूचना दी—राजपूत टोली के लोग हँसते-हँसते पागल हो रहे हैं। कहते हैं, कान पकड़कर पंचलैट के सामने पाँच बार उठो-बैठो, तुरन्त जलने लगेगा।

पंचों ने सुनकर मन-ही-मन कहा—भगवान् ने हँसने का मौका दिया है, हँसेंगे नहीं? एक बूढ़े ने आकर खबर दी, रूदल साह बनिया भारी बतंगड़ आदमी है। कह रहा है पंचलैट का पम्पू जरा होशियारी से देना।

गुलरी काकी की बेटी मुनरी के मुँह में बार-बार एक बात आकर मन में लौट जाती है। वह कैसे बोले? वह जानती है कि गोधन पंचलैट बालना जानता है। लेकिन, गोधन का हुक्का-पानी पंचायत से बन्द है। मुनरी की माँ ने पंचायत से फरियाद की थी कि गोधन रोज उसकी बेटी को देखकर 'सलम-सलम' वाला सलीमा का गीत गाता है—हम तुमसे मोहब्बत करके सलम! पंचों की निगाह पर गोधन बहुत दिन से चढ़ा हुआ था। दूसरे गाँव से आकर बसा है गोधन, और अब तक टोले के पंचों को पान-सुपारी खाने के लिए भी कुछ नहीं दिया। परवाह ही नहीं करता है। बस, पंचों को मौका मिला। दस रुपया जुरमाना! न देने से हुक्का-पानी बन्द।.....आज तक गोधन पंचायत से बाहर है। उससे कैसे कहा जाये? मुनरी उसका नाम कैसे ले? और उधर जाति का पानी उतर रहा है।

मुनरी ने चालाकी से अपनी सहेली के कान में बात डाल दी—कनेली!.....चिगो, चिधऽऽ, चिन....! कनेली मुस्कराकर रह गयी—गोधन तो बन्द है! मुनरी बोली—तू कह तो सरदार से!

—"गोधन जानता है, पंचलैट बालना!" कनेली बोली।

—कौन, गोधन? जानता है बालना? लेकिन.....।

सरदार ने दीवान की ओर देखा और दीवान ने पंचों की ओर। पंचों ने एकमत होकर हुक्का-पानी बन्द किया है। सलीमा का गीत गाकर आँख का इशारा मारनेवाले गोधन से गाँव भर के लोग नाराज थे। सरदार ने कहा—जाति की बन्दिश क्या, जबकि जाति की इज्जत ही पानी में बही जा रही है! क्यों जी दीवान?

दीवान ने कहा—ठीक है।

पंचों ने भी एक स्वर से कहा—ठीक है। गोधन को खोल दिया जाये।

सरदार ने छड़ीदार को भेजा। छड़ीदार वापस आकर बोला—गोधन आने को राजी नहीं हो रहा है। कहता है, पंचों की क्या परतीत है? कोई कल-कब्जा बिगड़ गया तो मुझे ही दण्ड-जुरमाना भरना पड़ेगा।

छड़ीदार ने रोनी सूरत बनाकर कहा—किसी तरह गोधन को राजी करवाइए, नहीं तो कल से गाँव में मुँह दिखाना मुश्किल हो जायगा।

गुलरी काकी बोली—जरा मैं देखूँ कहके!

गुलरी काकी उठकर गोधन के झोंपड़े की ओर गयी और गोधन को मना लायी। सभी के चेहरे पर नयी आशा की रोशनी चमकी। गोधन चुपचाप पंचलैट में तेल भरने लगा। सरदार की स्त्री ने पूजा की सामग्री के पास चक्कर काटती हुई बिल्ली को भगाया। कीर्त्तन-मण्डली का मूलगैन मुरछल के बालों को सँवारने लगा। गोधन ने पूछा—इसपिरिट कहाँ है? बिना इसपिरिट के कैसे जलेगा?

.....लो मजा! अब यह दूसरा बखेड़ा खड़ा हुआ। सभी ने मन ही मन सरदार, दीवान और पंचों की बुद्धि पर अविश्वास प्रकट किया—बिना बूझे-समझे काम करते हैं ये लोग! उपस्थित जन-समूह में फिर मायूसी छा गयी। लेकिन गोधन बड़ा होशियार लड़का है। बिना स्पिरिट के ही पंचलैट जलायेगा।.....थोड़ा गरी का तेल ला दो! मुनरी दौड़कर गयी और एक मलसी गरी का तेल ले आयी। गोधन पंचलैट में पम्प देने लगा।

पंचलैट की रेशमी थैली में धीरे-धीरे रोशनी आने लगी। गोधन कभी मुँह से फूँकता, कभी पंचलैट की चाबी घुमाता। थोड़ी देर के बाद पंचलैट से सनसनाहट की आवाज निकलने लगी और रोशनी बढ़ती गयी। लोगों के दिल का मैल दूर हो गया। गोधन बड़ा काबिल लड़का है।

अन्त में पंचलाइट की रोशनी से सारी टोली जगमगा उठी, तो कीर्त्तनिया लोगों ने एक स्वर में, महाबीर स्वामी की जय-ध्वनि के साथ कीर्त्तन शुरू कर दिया। पंचलैट की रोशनी में सभी के मुस्कराते हुए चेहरे स्पष्ट हो गये। गोधन ने सबका दिल जीत लिया। मुनरी ने हसरत भरी निगाह से गोधन की ओर देखा। आँखें चार हुईं और आँखों ही आँखों में बातें हुईं—कहा-सुना माफ करना! मेरा क्या कसूर?

सरदार ने गोधन को बहुत प्यार से पास बुलाकर कहा—तुमने जाति की इज्जत रखी है। तुम्हारा सात खून माफ। खूब गाओ सलीमा का गाना।

गुलरी काकी बोली—आज रात में मेरे घर में खाना गोधन।

गोधन ने एक बार फिर मुनरी की ओर देखा। मुनरी की पलकें झुक गयीं।

कीर्त्तनिया लोगों ने एक कीर्त्तन समाप्त कर जयध्वनि की—जय हो! जय हो...। पंचलैट के प्रकाश में पेड़-पौधों का पत्ता-पत्ता पुलकित हो रहा था।

अभ्यास प्रश्न

1. पंचलाइट एक आंचलिक कहानी है—आंचलिकता की धारणा को स्पष्ट करते हुए उसके प्रकाश में पंचलाइट का मूल्यांकन कीजिए।

अथवा आंचलिक कहानी से आप क्या समझते हैं? 'पंचलाइट' शीर्षक रचना के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

2. 'पंचलाइट' कहानी का कथासार अपने शब्दों में लिखिए।

अथवा 'पंचलाइट' कहानी की कथावस्तु लिखिए। **[2017 MB, MG, 19 CM]**

3. ''पंचलाइट कहानी में ग्रामीण समाज के सच्चे स्वरूप के दर्शन होते हैं।'' कहानी से उद्धरण देते हुए इस कथन का औचित्य सिद्ध कीजिए।

4. कहानी-कला की दृष्टि से 'पंचलाइट' कहानी की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

5. 'पंचलाइट' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।
[2016 SD, 17 MC, MD, 19 CQ, 20 ZB, ZC, ZE, ZG]

अथवा कथानक के आधार पर 'पंचलाइट' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।

6. रेणु के भाषा-प्रयोग की प्रमुख विशेषता बताते हुए उनके द्वारा प्रयुक्त असाधारण शब्दों पर प्रकाश डालिए।

7. कहानी कला की दृष्टि से 'पंचलाइट' कहानी की समीक्षा कीजिए।

8. कहानी की सफल परिणति के लिए लेखक के गौण कथा-विधान कौशल पर प्रकाश डालिए।

9. 'पंचलाइट' कहानी का सारांश प्रस्तुत कीजिए। **[2020 ZH, ZJ, ZK, ZL, ZM]**

10. हिन्दी के कहानीकारों में रेणु के महत्त्व का प्रतिपादन कीजिए।

11. 'पंचलाइट' कहानी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए। **[2020 ZM]**

12. कहानी के तत्त्वों के आधार पर 'पंचलाइट' कहानी की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

13. 'पंचलाइट' कहानी के केन्द्रीय भाव की सप्रमाण व्याख्या कीजिए।

14. फणीश्वरनाथ 'रेणु' की कहानी कला की विशेषताएँ संक्षेप में लिखिए। **[2017 MA]**

15. 'पंचलाइट' कहानी की कथावस्तु का विवेचन कीजिए।

16. 'पंचलाइट' कहानी की समीक्षा देश-काल के आधार पर कीजिए।

17. 'पंचलाइट' कहानी की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

18. 'पंचलाइट' कहानी का कथासार लिखते हुए कहानी के उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।

19. 'पंचलाइट' कहानी की मुनरी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

20. भाषा-शैली की दृष्टि से 'पंचलाइट' कहानी के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिए।

21. 'पंचलाइट' कहानी की कहानी-कला की दृष्टि से समीक्षा कीजिए।

22. 'पंचलाइट' के नायक की चारित्रिक विशेषताएँ बताइए। **[2018 AA]**

23. 'पंचलाइट' के नायक का चरित्र-चित्रण कीजिए।

24. 'पंचलाइट' कहानी के कथानक की विवेचना कीजिए।

25. 'कथानक' के आधार पर 'पंचलाइट' कहानी के तत्त्वों पर प्रकाश डालिए। **[2020 ZA]**

26. 'पंचलाइट' कहानी के तत्वों का उल्लेख कीजिए। **[2019 CQ]**

3 शिवानी

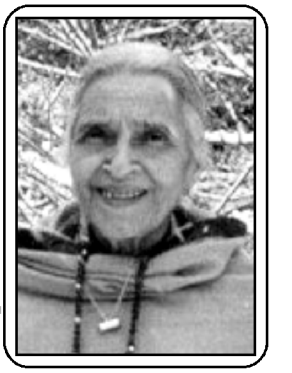

व्यक्तित्व

शिवानी का जन्म राजकोट (सौराष्ट्र : गुजरात) में 17 अक्टूबर, सन् 1924 ई० को विजयादशमी के दिन हुआ था। शान्ति निकेतन और कलकत्ता विश्वविद्यालय में आपने शिक्षा पायी। पर्वतीय समाज से आपकी सम्बद्धता रही है। आप लोकप्रिय लेखिका रहीं। आपकी कहानियाँ प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। शिवानी ने 79 वर्ष की उम्र में 21रमार्च, सन् 2003 ई० को इस दुनिया से सांसारिक नाता तोड़ लिया।

कृतित्व

शिवानी ने कहानियाँ, उपन्यास और संस्मरण लिखे हैं। प्रकाशित कथा-संग्रह हैं— **'विषकन्या'**, **'करिये छिमा'**, **'लाल हवेली'**, **'अपराधिनी'**, **'पुष्पहार'** तथा **'चार दिन'**। **'चौदह फेरे'**, **'श्मशान चम्पा'**, **'कैजा'**, **'भैरवी'**, **'कृष्णकली'**, **'मायापुरी'** **'सुरंगमा'** आदि उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं।

कथा-शिल्प एवं भाषा-शैली

शिवानी की कहानियों में अधिकतम पर्वतीय समाज से सम्बन्धित समस्याओं, प्रथाओं और मनोभावों का चित्रण किया गया है। आपने भावात्मक और सामाजिक-आर्थिक समस्याओं से जूझती-टकराती नारी को बड़े रोचक और मार्मिक रूप में चित्रित किया है। अधिकतम कहानियों के कथानक आपके निजी अनुभवों पर आधारित हैं। आपकी कहानियों में कथा का ताना-बाना या तो किसी घटना को केन्द्र में रखकर बुना गया है या फिर किसी चरित्र को। घटना-प्रधान कहानियों में कुतूहल और चमत्कार की विशेषता देखने को मिलती है। चरित्र-प्रधान कहानियाँ प्रायः किसी गम्भीर सामाजिक अथवा मानसिक समस्या का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती हैं। कहानियों के चरित्र प्रायः उच्चवर्गीय हैं। नारी और पुरुष दोनों के ही जीवन्त शब्दचित्र उभारने में आप कुशल रहीं। **'लाल हवेली'**, **'करिये छिमा'**, **'के'**, **'चीलगाड़ी'**, **'मधुयामिनी'** आदि आपकी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। बँगला कथा-शैली का आप पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

कहानियों की भाषा तत्सम-प्रधान है, जिसमें कथावस्तु के अनुरूप आंचलिक शब्दावली, मुहावरों, लोकोक्तियों और काव्य-पंक्तियों का सुरुचिपूर्ण प्रयोग मिलता है। शब्द-रचना कोमल तथा मोहक है। कवित्वपूर्ण चित्रण और सटीक उपमाओं के कारण आपकी कहानियों का एक विशिष्ट वातावरण है, जिसका सम्मोहन कथा के अन्त तक पाठक पर छाया रहता है। यह लालित्य और कवित्वपूर्ण सम्मोहन ही शिवानी की निजी विशेषता थी, जो उन्हें अन्य कथाकारों से अलग करती है। आपकी कहानियों की एक विशेषता उनकी व्यंग्यशीलता भी है। बड़े सधे और शालीन ढंग से आपने सामाजिक रूढ़ियों, विडम्बनाओं और बाह्याडम्बरों पर व्यंग्य किया है। इस व्यंग्य में हास्य और विनोद का भी सुखद पुट देखने को मिलता है।

लाटी

लम्बे देवदारों का झुरमुट झुक-झुककर गोठिया सैनेटोरिया की बलैया-सी ले रहा था। काँच की खिड़कियों पर सूरज की आड़ी-तिरछी किरणें मरीजों के क्लांत चेहरों पर पड़कर उन्हें उठा देती थी। मौत की नगरी के मुसाफिरों के रोग जीर्ण पीले चेहरे सुबह की मीठी धूप में क्षणभर को खिल उठते। आज टी. बी., सिरदर्द और जुकाम-खाँसी की तरह आसानी से जीती जाने वाली बीमारी है, पर आज से कोई बीस साल पहले टी. बी. मृत्यु का जीवन्त आह्वान थी। भुवाली से भी अधिक माँग तब गोठिया सैनेटोरियम की थी। काठगोदाम से कुछ ही मील दूर एक ऊँचे पहाड़ पर गोठिया सैनेटोरियम के लाल-लाल छतों के बँगले छोटे-छोटे गुलदस्ते से सजे थे।

तीन नम्बर के बँगले का दुगुना किराया देकर कप्तान जोशी स्वयं अपनी रोगिणी पत्नी के साथ रहता था। बँगले के बरामदे में पत्नी के पलँग के पास वह दिनभर आराम-कुर्सी डाले बैठा रहता, कभी अपने हाथों से टेम्परेचर चार्ट भरता और कभी समय देखकर दवाइयाँ देता। पास के बगल के मरीजों की बड़ी तृष्णा और चाव से सेवा करता था कप्तान जोशी! कभी उसके आनन्द चेहरे पर झुँझलाहट या खीझ की अस्पष्ट रेखा भी नहीं उभरती। कभी वह घुँघराले बालों को ब्रुश से सँवारता, बड़े ही मीठे स्वर में पहाड़ी झोड़े गाता, जिनकी मिठास में तिब्बती बकरियों के गले में बँधी, बजती-रुनकती घण्टियों की-सी छुनक रहती। पहाड़ी मरीज बिस्तरों से पुकार कर कहते, "वाह कप्तान साहब, एक और।" कप्तान अपने पलँग से घुली-मिली सुन्दरी 'बानो' की ओर देख बड़े लाड़ से मुस्करा देता। बानो का गोरा चेहरा बीमारी से एकदम पीला पड़ गया था और उसकी बड़ी-बड़ी आँखें और भी बड़ी-बड़ी हो गयी थीं। शान्त तरल दृष्टि से वह कप्तान को दिन-रात टुकुर-टुकुर देखती रहती। विवाह के दो वर्ष पश्चात् यही उनका वास्तविक हनीमून था, जहाँ न अम्मा, चाची और ताई की शासन की लगाम थी, न नयी बहू के घूँघट की बन्दिश। पिंजड़े की चिड़िया आजाद कर दी गयी थी किन्तु अब उसके कमजोर डैनों में उड़ने की ताकत नहीं थी। कप्तान उसकी दुर्बल तप्त हथेली को अपनी कसरती मुट्ठी में बड़े प्यार से दबाकर सहलाने लगता तो उसकी सींक-सी कलाई की सोने की चूड़ी सर-सर कर कोहनी तक सरक जाती।

उन दिनों गोठिया का डॉक्टर एक अधेड़ स्विस था। एक दिन उसने कप्तान को अकेले में बुलाकर कहा, "कप्तान, तुम अभी जवान हो, यह बीमारी जवानी की भूखी है। मैं देख रहा हूँ, तुम जरा भी परहेज नहीं बरतते। मरीज की भूख को दवा से जीतना होगा, मुहब्बत से नहीं।"

क्षणभर को सब समझकर कप्तान लाल पड़ गया। उसके बूढ़े पिता के भी कई पत्र आ चुके थे और माँ ने रो-रोकर चिट्ठियाँ डाल दी थीं, "मेरे दस-बीस पूत नहीं हैं बेटा, यह बीमारी सत्यानाशी है", पर कप्तान पहले की तरह अलमस्त डोलता, कभी बानो के चिकने केशों को चूमता, कभी उसकी रेशमी पलकों को, कभी पास के प्राइवेट वार्ड की, गुमानसिंह मालदार की गोल-मटोल पत्नी से मजाक करता।

सैनेटोरियम की मनहूस जिन्दगी के काले आकाश में रोबदार ठकुरानी ही एकमात्र द्युतिमान तारिका थीं। भरे-भरे हाथ-पैर की, चिकने चेहरे पर सदा मुस्कान बिखेरती वह परे सैनेटोरियम की भाभी थी। उसके स्वास्थ्य के दुर्गम दुर्ग में भी न जाने बीमारी का घुन किस अरक्षित छिद्र से प्रवेश पा गया था। टी०बी० लगने की पीड़ा से कराहती वह अपनी कदर्य गालियों का अक्षय भण्डार खोल देती। कभी लक्षपति श्वसुर को लक्ष्य बनाती, "हैं हमारे 'बुडज्यू' आधी कुमाऊँ के छत्रपति, पर बहू तिथांण (श्मशान) को जा रही है तो उनकी बला से! दुम उठाकर जिसे देखा, वही बदजात नर से मादा निकला" "ए शाब्बाश, क्या पंच के स्टैण्डर्ड का सेंस ऑफ ह्यूमर है! भाभी, तबीयत बाग-बाग कर दी।" कप्तान कहता। "एक मेरा खसम है साला। पी के धुत होगा किसी गोरी मेम को लेकर। दो महीने से हरामी झाँकने भी नहीं आया। दाढ़ीजारे की ठठरी उठेगी तो मजाल मैं भी सुहाग उतारूँ।" वह फिर कहती। "क्यों भाभी, क्यों कोस रही हो?" कप्तान हँसकर कहता।

प्रौढ़ा नेपाली भाभी की सदाबहार हँसी से खिलखिलाती आँखें छलक उठतीं, "शाबास है, कप्तान बेटा, तुझे देखकर मेरी छातियों में दूध उतर आता है। कैसी सेवा कर रहा है तू, और एक हमारे हैं कुतिया के जने! मिले तो मूँछें उखाड़कर हरामी के मुँह में ठूँस दूँ।"

कप्तान हँसते-हँसते दुहरा हो जाता, मूँछें उखाड़कर मुँह में ठूँसने की बात कुछ ऐसी जम जाती है कि वह भागकर बानो को सुना आता।

नेपाली भाभी के पति की असंख्य मोटरें अल्मोड़ा-नैनीताल को घेरे रहतीं, चाय के बगीचों का अन्त नहीं था किन्तु उनके वैभव ने पत्नी के प्रति प्रेम और मोह की बेड़ियाँ काट दी थीं। एक वर्ष से वे एक बार भी उसे देखने नहीं आये।

एक दिन कप्तान ने देखा, नेपाली भाभी की खाँसी बहुत ही बढ़ गयी है। खाँसी का दौरा-सा पड़ा और कप्तान भागकर देखने गया तो देखा, रक्त के कुण्ड के बीच नेपाली भाभी की विराट गेहुँआ देह निष्प्राण पड़ी थी। पति की मूँछों को उसके मुँह में ठूँसने के स्वप्न अधूरा ही छोड़कर भाभी चली गयी थी।

कुछ दिन तक कप्तान उदास हो गया। बानो की बड़ी-बड़ी आँखों में भी उदासी के डोरे पड़ गये। जब ऐसी हँसती-खेलती लाल-लाल भाभी को मौत खींच ले गयी तो हड्डियों का ढाँचा मात्र बानो तो हवा में उड़ती रुई का फाया थी। भाभी की मौत आकर जैसे उन दोनों के कान में कह गयी थी कि जिन्दगी कुछ ही पलों की है। उन अमूल्य पलों के अमृतस्वरूपी रस की अन्तिम बूँद भी उन दोनों को छोड़ना मंजूर न था। नित्य निकट आती मौत ने बानो को चिड़चिड़ा बना दिया पर जैसे इकलौते जिद्दी दुर्बल बालक की हर जिद् को स्नेहमयी माता हँस-खेलकर झेल लेती है, वैसे ही कप्तान हठीली बानो की हर जिद् पूरी करता। कभी वह खिली चाँदनी में बाहर जाने को मचलती तो वह अपने खाकी ओवरकोट में उसे लपेटकर अपनी देह से सटाये लम्बे चीड़ की छाया में बैठा रहता।

बानो से विवाह के ठीक तीसरे ही दिन छोड़कर उसे बसरा जाना पड़ा था। उन तीन दिनों में, खाकी वर्दी में कसे छह-फुटी शरीर और भूरी-भूरी मूँछों को देखकर, बानो उससे जितना ही कटी-कटी छिपी फिरती, वह उसे पाने को उतना ही उन्मत हो उठता। उसे देखते ही वह अपनी मेंहदी लगी नाजुक हथेलियों से लाज से गुलाबी चेहरा ढाँक लेती। दूसरे दिन बड़ी कठिनता से कप्तान उसके मुँह से धीमी फुसफुसाहट में उसका नाम कहलवा पाया था, बहुत धीमे स्वर में ही प्रणय-निवेदन की भूमिका बाँधनी पड़ी थी; क्योंकि पास के कमरे में ही ताऊजी लेटते थे।

"क्या नाम है तुम्हारा?" उसकी तीखी ठुड्डी उठाकर कप्तान ने पूछा था।

"बानो।" उसके पहले होंठ हिलकर रह गये।

"राम-राम, मुसलमानी नाम।" कप्तान ने हँसकर छेड़ दिया।

"सब यही कहते हैं, मैं क्या करूँ?" बानो की आँखें छलक उठीं।

"मैं तो तुम्हें छेड़ रहा था, कितना प्यारा नाम है! पहाड़ी नाम भी कोई नाम होते हैं भला, सरुली, परुली, रमा, खष्टी।" वह बोला, "कितने साल की हो तुम, बानो?"

"इस आषाढ़ में मुझे सोलहवाँ लगेगा।" बानो ऐसे उत्साह से बोली जैसे उसने आधी जिन्दगी पार कर ली हो। कप्तान का दिल भर आया, अपनी खिलौने-सी बहू को उसने खींचकर हृदय से लगा लिया। पहले वह अपने ताऊ और पिता से सख्त नाराज हो गया था, कहाँ वह ठसकेदार बाँका कप्तान और कहाँ हाईस्कूल पास छोकरी को पल्ले बाँधकर रख दिया! पर बालिका बानो की सरल आँखों का जादू उस पर चल गया। तीसरे दिन ही उसे बसरा जाना था। कप्तान बानो से विदा लेने गया तो वह कोने में बैठी छालियाँ कतर रही थी, उसकी पलकें भीगी थीं और पति की आहट पाकर उसने घुटनों में सिर डाल दिया। झट से झुककर कप्तान ने उसका माथा चूम लिया। उसका गला भर आया।

तीन दिन की ताजी सुन्दरी नववधू को इस तरह छोड़कर जाना कप्तान को दुश्मन की गोलाबारी से भी भयंकर लगा। उसके बाद दो वर्षों तक कप्तान युद्ध की विभीषिका में भटक गया। बर्मा और बसरा के जंगलों में भटक-भटककर उसके साथी बहशी बन गये थे। गन्दे अश्लील मजाक करते। फौजी अफसरों में कप्तान ही सबसे छोटी उम्र का था। बर्मा की युद्ध से स्तब्ध सड़कों पर चपल बर्मी रमणियों के कुटिल कटाक्षों का अभाव नहीं था, फिर भी कप्तान अपनी जवानी को दाँतों के बीच जीभ-सी बचाता सेंत गया।

दो साल बाद घर पहुँचा तो दुनिया बदल चुकी थी। उन दो वर्षों में बानो ने सात-सात ननदों के ताने सुने, भतीजों के कपड़े धोए, ससुर के होज बिने, पहाड़ की नुकीली छतों पर पाँच-पाँच सेर उड़द पीस कर बड़ियाँ तोड़ीं। कभी सुनती उसके पति को जापानियों ने कैद कर लिया है, अब वह कभी नहीं लौटेगा। सास और चचिया सास के व्यंग्य-बाण उसे छेद देते, वह घुलती गयी और एक दिन क्षय का तक्षक कुण्डली मारकर उसकी नन्हीं-सी छाती पर बैठ गया। उसे सैनेटोरियम भेज दिया गया था। दूसरे ही दिन कप्तान बानो को देखने चल दिया तो घरवालों के चेहरे लटक गये।

गोठिया पहुँचा और एक प्राइवेट वार्ड के बरामदे में लेटी बानो को देखकर उसका कलेजा उछलकर मुँह को आ गया। दो वर्षों में बानो घिसकर और भी बच्ची बन गयी थी। कप्तान को देखकर उसकी तरल आँखें खुली ही रह गयीं, फिर आँसू टपकने लगे। कहने और कैफियत देने की कोई गुंजाइश नहीं रही। बानो के बहते आँसुओं की धारा ने दो साल के सारे उलाहने सुना दिये। दोनों ने समझ लिया कि मिलन के वे क्षण मुट्ठी-भर ही रह गये थे।

उन दिनों सैनेटोरियम में एक अत्यन्त क्रूर नियम था। रोगियों को उनकी अन्तिम अवस्था जानकर उन्हें घर भेज दिया जाता। सैनेटोरियम की मृत्यु का प्रवेश सर्वथा निषिद्ध था। नेपाली भाभी की मृत्यु के बाद कप्तान और बानो मातम में डूब गये पर चौथे दिन वे फिर हनीमून मनाने लगे। अपनी साड़ियों का बाक्स निकलवा कर बानो ने कई साड़ियों पर इस्त्री करवायी। बड़ी देर तक दोनों ने पेशेन्स खेला, पर शाम होते ही बानो मुरझाने लगी। दिनभर उसे दस्त आ रहे थे और टी०बी० के मरीज को दस्त आना खतरे से खाली नहीं होता। डॉक्टर दलाल आया, उसने कप्तान को बाहर ले जाकर कमरा खाली करवाने का नोटिस दे दिया, "कल ही ले जाना होगा, आई गिव हर टू डु थ्री डेज। इससे ज्यादा नहीं बचेगी।"

कप्तान का चेहरा सफेद पड़ गया। घर जाने का प्रश्न नहीं उठता था, तीन रसभरे महीनों की मीठी धरोहर को वह घर की कड़वाहट से अछूता ही रखना चाहता था। भुवाली के पास ही एक चाय की दूकान के नीचे साफ-सुथरा कमरा, मृत्यु का पासपोर्ट पाये बानो-जैसे अभागे मरीजों के लिए सदा बाँह फैलाये खुला रहता था।

"सैनेटोरियम छोड़कर हम कल दूसरी जगह चलेंगे, बानो। यहाँ साली तबीयत बोर हो गयी है।" बड़े उत्साह और आनन्द से कप्तान ने भूमिका बाँधी, पर बानो का चेहरा फक पड़ गया। वह समझ गयी कि आज उसे भी नोटिस दे दिया गया है।

बड़ी रात तक कप्तान उसके गालों के पास अपना चेहरा ले जाकर गुनगुनाता रहा, "बानो, मेरी बन्नी, बन्नू!" और फिर जब बानो को नींद आ गयी तो वह भी अपने पलँग पर जाकर सो गया।

सुबह उठा तो बानो पलँग पर नहीं थी। सोचा, घिसटती बाथरूम तक चली गयी होगी। जोश आने पर वह काफी दूर तक चल लेती थी। बड़ी देर तक नहीं लौटी तो वह घबराकर उठा। बानो कहीं नहीं थी। भागकर वह मरीजों के पास गया, डॉक्टर आया, नर्सें आयीं, चौकीदार आया, पर बानो कहीं नहीं थी। सैनेटोरियम में आज पहली बार ऐसी अनहोनी घटना घटी थी।

दूसरे दिन बड़ी दूर रथी घाट पर बानो की साड़ी मिली थी। मृत्यु के आने से पूर्व वह अभागी स्वयं ही भागकर मृत्यु से मिलने चली गयी थी।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बानो ने डूबकर आत्महत्या कर ली थी। शोक से पागल होकर कप्तान उसकी साड़ी को छाती से चिपटाए फिरता रहा; किन्तु मर्द की जवानी जाड़े की भयंकर लम्बी रात के समान है, जो काटे नहीं कटती। एक ही साल में उसका फिर विवाह हुआ, अब के ताऊ और पिता ने खूब ठोंक-पीटकर बहू छाँटी। ऊँची-अगली, गोरी और एम० ए० पास। कप्तान की नयी पत्नी के पिता थे मेजर जनरल। चालीस तमगे लगाकर उन्होंने कन्यादान किया तो कप्तान बेचारा सहम कर रह गया। प्रभा इकलौती लड़की थी फिर दुजू की बीवी थी, जो बादशाह की घोड़ी से कम नहीं होती। उसके सौ-सौ नखरे उठाता कप्तान हँसना, खिलखिलाना और मौज-मस्तियाँ सब भूलकर रह गया।

चार साल में कप्तान को दो बेटे और एक बेटी देकर प्रभा ने धन-संचय की ओर ध्यान लगाया। सोलह सालों में कप्तान के बैंक-बैलेंस में रुपयों और नोटों की मोटी तह जमाकर दोनों नैनीताल घूमने आये। कप्तान की थोड़ी-सी तोंद निकल आयी थी, चेहरा अभी भी मस्ताना था, पर मूँछों में अब वह ऐंठ नहीं रह गयी थी, कनपटी के आस-पास बाल सफेद हो चले थे। दो जवान लड़कों को कमीशन मिल गया था, बेटी मिरांडा हाउस में पढ़ रही थी।

नैनीताल आकर कप्तान के दिल में एक टीस-सी उठी। काठगोदाम से चलकर गोठिया दिखा और वह गुमसुम-सा हो गया।

नैनीताल के ग्राण्ड होटल में दोनों टिके। प्रभा बोली, "चलो डार्लिंग, पहाड़ का इंटीरियर घूमा जाय। भुवाली चलें।" चिकन, सैंडविच, रोस्ट मुर्ग पैक करवा कर उसने अपनी फियट गाड़ी भुवाली की ओर छोड़ी। बगल में दामी चंदेरी साड़ी और बिना बाँहों के ब्लाउज से अपने माँसल शरीर की गोरी दमक बिखेरती प्रभा बैठी। भुवाली की एक छोटी-सी दूकान देखकर प्रभा ने गाड़ी रुकवा दी, "इसी दूकान में आज एकदम पहाड़ी स्टाइल से कलई के गिलास में चाय पियेंगे हनी।' वह बोली।

कप्तान अब मेजर था, "मेजर की डिग्निटी कहाँ जाएगी?" वह बोला।

"भाड़ में!" कहकर प्रभा अपनी पेंसिल हील की जूतियाँ चटकाती दूकान में घुस गयी।

काठ की एक बेंच धुएँ और कालिख से काली पड़ गयी थी, उसी को झाड़कर दोनों बैठ गये। पहले कुछ देर को पहाड़ी दूकानदार भौंचक्क-सा रह गया। लकड़ी के धुएँ से एकदम काली केटली में चाय उबल रही थी।

"खूब गर्म दो गिलास चाय लाओ, प्रधान।" मेजर ने पहाड़ी में कहा और दूकानदार का मुँह खुला ही रह गया। ऐसी अंग्रेजी में बोलने वाला अनोखा जोड़ा पहाड़ी कैसे हो गया, वह सोचने लगा।

वह चाय बना ही रहा था कि अलख-अलख करते वैष्णवियों के दल ने भीतर घुसकर दूकान घेर ली, "ओ हो गुरु, भल द्दा भल द्दा भल द्दा।" कहकर वैष्णवियों के हेड ने बड़े प्रभुत्वपूर्ण स्वर में सोलह गिलास चाय का आर्डर दे दिया। हेड वैष्णवी बड़ी ही मुखर और मर्दानी थी, इसी से शायद मर्दाने स्वर में बोल भी रही थी, "सोचा, बामण ज्यू की ही दूकान की चाय छोरियों को पिलाऊँगी, आज एकादशी है।"

"क्यों नहीं! क्यों नहीं!" दूकानदार बोला, "अरे लाटी भी आयी है?"

"अरे कहाँ जाएगी अभागी?" वैष्णवी ने कहा। प्रभा और मेजर की दृष्टि एक साथ ही लाटी पर पड़ी।

कुत्सित बूढ़ी अधेड़ वैष्णवियों के बीच देवांगना-सी सुन्दरी लाटी अपनी दाड़िम-सी दंतपंक्ति दिखाकर हँस दी। मेजर का शरीर सुन्न पड़ गया, स्वस्थ होकर जैसे साक्षात् बानो ही बैठी थी। गालों पर स्वास्थ्य की लालिमा थी, कान तक फैली आँखों में वही तरल स्निग्धता थी और गूँगी जिह्वा पर गूँगापन चेहरे पर फैलकर उसे और भी भोला बना रहा था।

"हाय, क्या यह गूँगी है? माई गॉड, ह्वाट ब्यूटी।" प्रभा बोली।

"हाँ सरकार, यह लाटी है।" दूकानदार ने कहा और मेजर के दिल पर आ गिरी भारी पत्थर की चट्टान उठ गयी।

"क्या नाम है जी इसका?" प्रभा मुग्ध लाटी को ही देख रही थी।

"नाम जो होगा, वह तो बह गया मीमशाब, अब तो लाटी ही इसका नाम है।"

हेड वैष्णवी ने कहा, "हमारे गुरु महाराज को इसकी देह नदी में तैरती मिली। जीभड़ी इसकी कटकर कहीं गिर गयी थी। राम जाने कौन था वह! गले में चरयो (मंगल-सूत्र) था, ब्याह हो गया होगा। फिर हमारा गुरु महाराज इसको गुरुमंतर दिया। भयंकर 'छे रोग' था। एक-एक सेर खून उगलता था, पर गुरु की शरण में आया तो सब रोग-सोग ठीक हो गया इसका। लाटी, जीभ दिखा।"

धुँ-धुँ कर लाटी ने भुवनमोहिनी हँसी हँस दी, जीभ नहीं दिखायी।

"कुछ नहीं समझती साली। बस खाती है ढाई सेर, सब भूल गया, हमारा आर्डर भी नहीं मानता।" असंतुष्ट स्वर में मर्दानी वैष्णवी बोली।

"ओह, माई गॉड! अपने आदमी को भी भूल गयी क्या?" प्रभा बोली।

"जो था सो था, इसको कुछ याद नहीं। खाली 'फिक-फिक' कर हँसती है।"

हरामी। अब परभू इसका मालिक और परभू इसका सहारा है। हाँ, "गुरु कितना पैसा हुआ?"

हेड वैष्णवी ने पैसे चुकाए और उसका दल अलख बजाता उठ खड़ा हुआ। लाटी बैठी ही रही, मेजर एकटक उसे देख रहा था। यह वही बानो थी, जिसे डॉक्टर दलाल और कक्कड़ जैसे प्रसिद्ध विशेषज्ञों की मृत्युंजय ओषधियाँ भी स्वस्थ नहीं कर सकी थीं।

"उठ साली लाटी!" हेड वैष्णवी ने हल्की-सी ठोकर से लाटी को उठाया। एक बार फिर अपनी मधुर हँसी से मेजर का हृदय बींधकर लाटी उठी और दल के पीछे-पीछे चल दी। काश, उसके भोले चेहरे से गाल सटाकर मेजर कह सकता, "मेरी बानो, बन्नी, बन्नू!" शायद उसकी गूँगी जबान के नीचे दबी उसकी गूँगी पिछली जिन्दगी बोल उठती।

पर मेजर, जिन्दगी की दौड़ में बहुत आगे निकल आया था, पीछे लौटकर बिछुड़े को लाना सबसे बड़ी मूर्खता होती। दो जवान बेटे और बेटी, राष्ट्रपति के सहभोजों में चमकती उसकी शानदार दूसरी बीवी, गरीब, गूँगी लाटी का आना कैसे सह सके?

"उठो डार्लिंग, लंच गर्म पानी में करेंगे।" प्रभा ने कहा और मेजर उठ खड़ा हुआ। कुछ ही पलों में वह बूढ़ा और खोखला हो गया था।

बानो मर गयी थी। अब तो वह लाटी थी। परभू अब उसका मालिक और परभू ही उसका सहारा था।

अभ्यास प्रश्न

1. कथानक की दृष्टि से 'लाटी' कहानी की समीक्षा कीजिए। **[2019 CL]**
2. वातावरण चित्रण की दृष्टि से 'लाटी' कहानी की लेखिका ने कहाँ तक सफलता पायी है? सोदाहरण उत्तर दीजिए।
3. 'लाटी' कहानी की कथावस्तु का विवेचन कीजिए। **[2017 MA, 19 CM]**
4. सिद्ध कीजिए कि "'लाटी' एक घटना-प्रधान कहानी है।" कथा का अन्त आप पर क्या प्रभाव छोड़ जाता है?
5. कथानक के आधार पर 'लाटी' कहानी की समीक्षा कीजिए।
6. "शिवानी की यह कहानी आदि से अन्त तक नाटकीयता से युक्त है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?
7. 'लाटी' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए। **[2020 ZF, ZD]**

अथवा 'लाटी' के प्रमुख पात्र की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

8. 'लाटी' कहानी की भाषा-शैली की विशेषताओं को लिखिए।
9. कहानी-कला की दृष्टि से 'लाटी' कहानी की समीक्षा कीजिए।
10. 'लाटी' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए। **[2016 SC, 17 MG, 20 ZL]**
11. 'लाटी' कहानी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए। **[2020 ZH, ZJ, ZK, ZL, ZN]**
12. कहानी-तत्त्वों के आधार पर 'लाटी' कहानी की विशेषताएँ लिखिए।
13. 'लाटी' कहानी की नायिका का चित्रांकन कीजिए।
14. 'लाटी' कहानी की कथावस्तु का उल्लेख करते हुए उसके नामकरण की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।
15. 'लाटी' कहानी की कथावस्तु पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

अथवा 'लाटी' कहानी की कथावस्तु लिखिए।

16. 'लाटी' कहानी के वैशिष्ट्य की विवेचना कीजिए।
17. कहानी के तत्वों के आधार पर 'लाटी' कहानी की समीक्षा कीजिए।

4 अमरकान्त

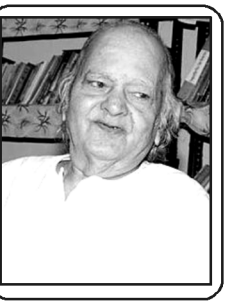

व्यक्तित्व

अमरकान्त का जन्म सन् 1925 ई० में बलिया (उ०प्र०) में हुआ। आपके पिता का नाम सीताराम वर्मा है। आपकी शिक्षा बलिया, गोरखपुर तथा प्रयाग में हुई। बी० ए० तक आपने शिक्षा प्राप्त की। सन् 1942 के असहयोग-आन्दोलन में आपने भाग लिया। आपकी आस्था प्रगतिशील जीवनदृष्टि में है। पत्रकारिता में आपकी विशेष रुचि है। 'सैनिक', 'अमृतपत्रिका', 'कहानी' आदि पत्र-पत्रिकाओं से सम्बद्ध रहे। 'मनोरमा' पत्रिका का भी आपने सम्पादन किया। पहली कहानी, 'बाबू' आगरा के 'सैनिक' पत्र में छपी। गम्भीर साहित्यिक प्रयास इसके एक वर्ष बाद 'इण्टरव्यू' कहानी से आरम्भ हुआ। 13 मार्च, 2012 को इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इनका देहावसान 17 फरवरी, 2014 को इलाहाबाद में हुआ।

कृतित्व

अमरकान्त के तीन कथा-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—**'जिन्दगी और जोंक', 'देश के लोग'** और **'मौत का नगर'**। आपने उपन्यास भी लिखे हैं जैसे—**'सूखा पत्ता', 'काले-उजले दिन', 'आकाश पक्षी', 'पराई डाल का पक्षी', 'दीवार और आँगन'** तथा **'कँटीली राह के फूल'**।

कथा-शिल्प एवं भाषा-शैली

अमरकान्त ने निहायत साधारण जीवन की घटनाओं और स्थितियों को अपनी कहानियों का विषय बनाया है। बिना किसी विशेष आग्रह के उद्दाम मानवीय जिजीविषा का मूर्तीकरण आपकी निजी विशेषता है। आपमें गहरी अन्तर्दृष्टि और संवेदना है। अपने कथा-पात्रों से उन्हें केवल सहानुभूति नहीं होती, वरन् वे उन्हीं के साथ जीते हैं। अधिकतर कहानियों में नवीन आर्थिक परिस्थितियों से जूझते मध्यवर्गीय समाज की समस्याओं, विशेषताओं, पीड़ाओं, प्रवंचनाओं और जीवन की भूख का मर्मवेधी चित्रण किया गया है। यह कहना सही होगा कि अमरकान्त के नाम के बिना आज की नयी कहानी की कोई भी चर्चा अधूरी है। **'इण्टरव्यू', 'डिप्टी कलक्टरी', 'मौत का नगर', 'हत्यारे', 'मूस', 'दोपहर का भोजन', 'गगनविहारी', 'घुड़सवार', 'छिपकली', 'मित्रमिलन', 'लड़का-लड़की'** आदि आप की श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

अमरकान्त की कथा-शैली सरल और सहज है, उसमें किसी प्रकार दुराव-छिपाव, वक्रता अथवा 'फैशन' नहीं है। आपकी कहानियों में बोधगम्यता और सादगी है—कलायुक्तिहीन सादगी, किन्तु उनका बहाव दुर्निवार है। पात्र के अनुकूल भाषा का प्रयोग करना इनकी विशेषता है। इनकी शैली अधिकांशतः वर्णनात्मक है। इनकी भाषा-शैली एक सफल कहानीकार के सर्वथा अनुरूप है। उनमें सामाजिक व्यंग्य की विशेषता देखने को मिलेगी। अन्तिम प्रभाव करुणामूलक हुआ करता है। अमरकान्त की कहानियाँ पत्थर की तरह ठोस और कंक्रीट की तरह शक्तिसम्पन्न हैं। 'जिन्दगी और जोंक' आपकी प्रसिद्ध कहानी है, जिसने यथार्थवादी कहानी की परम्परा को एक नवीन स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया है।

बहादुर

सहसा मैं काफी गम्भीर हो गया था, जैसा कि उस व्यक्ति को हो जाना चाहिए, जिस पर एक भारी दायित्व आ गया हो। वह सामने खड़ा था और आँखों को बुरी तरह मलका रहा था। बारह-तेरह वर्ष की उम्र। ठिगना चकइठ शरीर, गोरा रंग और चपटा मुँह। वह सफेद नेकर, आधी बाँह की ही सफेद कमीज और भूरे रंग का पुराना जूता पहने था। उसके गले में स्काउटों की तरह एक रूमाल बँधा था। उसको घेरकर परिवार के अन्य लोग खड़े थे। निर्मला चमकती दृष्टि से कभी लड़के को देखती और कभी मुझको और अपने भाई को। निश्चय ही वह पंच-बराबर हो गयी थी।

उसको लेकर मेरे साले साहब आये थे। नौकर रखना कई कारणों से बहुत जरूरी हो गया था। मेरे सभी भाई और रिश्तेदार अच्छे ओहदों पर थे और उन सभी के यहाँ नौकर थे। मैं जब बहन की शादी में घर गया तो वहाँ नौकरों का सुख देखा। मेरी दोनों भाभियाँ रानी की तरह बैठकर चारपाइयाँ तोड़ती थीं, जब कि निर्मला को सबेरे से लेकर रात तक खटना पड़ता था। मैं ईर्ष्या से जल गया। इसके बाद नौकरी पर वापस आया तो निर्मला दोनों जून 'नौकर चाकर' की माला जपने लगी। उसकी तरह अभागिन और दुखिया स्त्री और भी कोई इस दुनिया में होगी? वे लोग दूसरे होते हैं, जिनके भाग्य में नौकर का सुख होता है.....।

पहले साले साहब से असाधारण विस्तार से उसका किस्सा सुनना पड़ा। वह एक नेपाली था, जिसका गाँव नेपाल और बिहार की सीमा पर था। उसका बाप युद्ध में मारा गया था और उसकी माँ सारे परिवार का भरण-पोषण करती थी। माँ उसकी बड़ी गुस्सैल थी और उसको बहुत मारती थी। माँ चाहती थी कि लड़का घर के काम-धाम में हाथ बंटाये, जबकि वह पहाड़ या जंगलों में निकल जाता और पेड़ों पर चढ़कर चिड़ियों के घोंसलों में हाथ डालकर उनके बच्चे पकड़ता या फल तोड़-तोड़कर खाता। कभी-कभी वह पशुओं को चराने के लिए ले जाता था। उसने एक बार उस भैंस को बहुत मारा, जिसको उसकी माँ बहुत प्यार करती थी, और इसीलिए उससे वह बहुत चिढ़ता था। मार खाकर भैंस भागी-भागी उसकी माँ के पास चली गयी, जो कुछ दूरी पर एक खेत में काम कर रही थी। माँ का माथा ठनका। बेचारा बेजबान जानवर चरना छोड़कर यहाँ क्यों आयेगा? जरूर लौंडे ने इसको काफी मारा है। वह गुस्से से पागल हो गयी। जब लड़का आया तो माँ ने भैंस की मार का काल्पनिक अनुमान करके एक डण्डे से उसकी दुगुनी पिटाई की और उसको वहीं कराहता हुआ छोड़कर घर लौट आयी। लड़के का मन माँ से फट गया और वह रात भर जंगल में छिपा रहा। जब सबेरा होने को आया तो वह घर पहुँचा और किसी तरह अन्दर चोरी-चुपके घुस गया। फिर उसने घी की हँडिया में हाथ डालकर माँ के रखे रुपयों में से दो रुपये निकाल लिये। अन्त में नौ-दो ग्यारह हो गया। वहाँ से छह मील की दूरी पर बस-स्टेशन था, जहाँ गोरखपुर जानेवाली बस मिलती थी।

—तुम्हारा नाम क्या है जी?—मैंने पूछा।

—दिलबहादुर, साब।

उसके स्वर में एक मीठी झनझनाहट थी। मुझे ठीक-ठीक याद नहीं कि मैंने उसको क्या हिदायतें दी थीं। शायद यह कि वह शरारतें छोड़कर ढंग से काम करे और घर को अपना घर समझे। इस घर में नौकर-चाकर को बहुत प्यार और इज्जत से रखा जाता है। जो सब खाते-पहनते हैं, वही नौकर-चाकर खाते-पहनते हैं। अगर वह यहाँ रह गया तो ढंग-शऊर सीख जायेगा, घर के और लड़कों की तरह पढ़-लिख जायेगा और उसकी जिन्दगी सुधर जायेगी। निर्मला ने उसी समय कुछ व्यावहारिक उपदेश दे डाले थे। इस मुहल्ले में बहुत तुच्छ लोग रहते हैं, वह न किसी के यहाँ जाये और न किसी का काम करे। कोई बाजार से कुछ लाने को कहे तो वह 'अभी आता हूँ', कहकर अन्दर खिसक जाय। उसको घर के सभी लोगों से सम्मान और तमीज से बोलना चाहिए। और भी बहुत-सी बातें। अन्त में निर्मला ने बहुत ही उदारतापूर्वक लड़के के नाम में से 'दिल' शब्द उड़ा दिया।

परन्तु बहादुर बहुत ही हँसमुख और मेहनती निकला। उसकी वजह से कुछ दिनों तक हमारे घर में वैसा ही उत्साहपूर्ण वातावरण छाया रहा, जैसा कि प्रथम बार तोता-मैना या पिल्ला पालने पर होता है। सबेरे-सबेरे ही मुहल्ले के छोटे-छोटे लड़के घर के अन्दर आकर खड़े हो जाते और उसको देखकर हँसते या तरह-तरह के प्रश्न करते। 'ऐ तुम लोग छिपकली को क्या कहते हो?' 'ऐ, तुमने शेर देखा है।?' ऐसी ही बातें। उससे पहाड़ी गाने की फरमाइशें की जातीं। घर के लोग भी उससे इसी प्रकार की छेड़खानियाँ करते थे। वह जितना उत्तर देता था उससे अधिक हँसता था। सबको उसके खाने और नाश्ते की बड़ी फिक्र रहती।

निर्मला आँगन में खड़ी होकर पड़ोसियों को सुनाते हुए कहती थी—बहादुर, आकर नाश्ता क्यों नहीं कर लेते? मैं दूसरी औरतों की तरह नहीं हूँ, जो नौकर-चाकर को तलती-भूनती हैं। मैं तो नौकर-चाकर को अपने बच्चे की तरह रखती हूँ। उन्होंने तो साफ-साफ कह दिया है कि सौ, डेढ़-सौ महीनावारी उस पर भले ही खर्च हो जाय, पर तकलीफ उसको जरा भी नहीं होनी चाहिए। एक नेकर-कमीज तो उसी रोज लाये थे.....और भी कपड़े बन रहे हैं.....

धीरे-धीरे वह घर के सारे काम करने लगा। सबेरे ही उठकर वह बाहर नीम के पेड़ से दातुन तोड़ लाता था। वह हाथ का सहारा लिये बिना कुछ दूर तक तने पर दौड़ते हुए चढ़ जाता। मिनट भर में वह पेड़ की पुलई पर नजर आता। निर्मला छाती पीटकर कहती थी—अरे रीछ-बन्दर की जात, कहीं गिर गया तो बड़ा बुरा होगा। वह घर की सफाई करता, कमरों में पोंछा लगाता, अँगीठी जलाता, चाय बनाता और पिलाता। दोपहर में कपड़े धोता और बर्तन मलता। वह रसोई बनाने की भी जिद्द करता, पर निर्मला स्वयं सब्जी और रोटी बनाती। निर्मला को उसकी बहुत फिक्र रहती थी। उसकी उन दिनों तबीयत ठीक नहीं रहती थी, इसलिए वह कुछ दवा ले रही थी। बहादुर उसको कोई काम करते देखकर कहता था—माता जी, मेहनत न करो, तकलीफ बढ़ जायेगा। वह कोई भी काम करता होता, समय होने पर हाथ धोकर भालू की तरह दौड़ता हुआ कमरे में जाता और दवाई का डिब्बा निर्मला के सामने लाकर रख देता।

जब मैं शाम को दफ्तर से आता, तो घर के सभी लोग मेरे पास आकर दिन भर के अपने अनुभव सुनाते थे। बाद में वह भी आता था। वह एक बार मेरी ओर देखकर सिर झुका लेता और धीरे-धीरे मुस्कराने लगता। वह कोई बहुत ही मामूली घटना की रिपोर्ट देता।—बाबूजी, बहिन जी का एक सहेली आया था। या बाबूजी, भैया सिनेमा गया था। इसके बाद वह इस तरह हँसने लगता था, गोया बहुत ही मजेदार बात कह दी हो। उसकी हँसी बड़ी कोमल और मीठी थी, जैसे फूल की पंखुड़ियाँ बिखर गयी हों। मैं उससे बातचीत करना चाहता था, पर ऐसी इच्छा रहते हुए भी मैं जान-बूझकर बहुत गम्भीर हो जाता था और दूसरी ओर देखने लगता था।

निर्मला कभी-कभी उससे पूछती थी—बहादुर, तुमको अपनी माँ की याद आती है?

—नहीं।

—क्यों?

—वह मारती क्यों थी?—इतना कहकर वह खूब हँसता था, जैसे मार खाना खुशी की बात हो।

—तब तुम अपना पैसा माँ के पास कैसे भेजने को कहते हो?

—माँ-बाप का कर्जा तो जन्म भर भरा जाता है—वह और भी हँसता था।

निर्मला ने उसको एक फटी-पुरानी दरी दे दी थी। घर से वह एक चादर भी ले आया था। रात को काम-धाम करने के बाद वह भीतर के बरामदे में एक टूटी हुई बँसखट पर अपना बिस्तर बिछाता था। वह बिस्तरे पर बैठ जाता और अपनी जेब में से कपड़े की एक गोल-सी नेपाली टोपी निकालकर पहन लेता, जो बायीं ओर काफी झुकी रहती थी। फिर वह एक छोटा-सा आईना निकालकर बन्दर की तरह उसमें अपना मुँह देखता था। वह बहुत ही प्रसन्न नजर आता था। इसके बाद कुछ और भी चीजें उसकी जेब से निकलकर उसके बिस्तरे पर सज जाती थीं—कुछ गोलियाँ, पुराने ताश की एक गड्डी, कुछ खूबसूरत पत्थर के टुकड़े, ब्लेड, कागज की नावें। वह कुछ देर तक उनसे खेलता था। उसके बाद वह धीमे-धीमे स्वर में गुनगुनाने लगता था। उन पहाड़ी गानों का अर्थ हम समझ नहीं पाते थे, पर उनकी मीठी उदासी सारे घर में फैल जाती, जैसे कोई पहाड़ की निर्जनता में अपने किसी बिछुड़े हुए साथी को बुला रहा हो।

X X X X

दिन मजे में बीतने लगे। बरसात आ गयी थी। पानी रुकता था और बरसता था। मैं अपने को बहुत ऊँचा महसूस करने लगा था। अपने परिवार और सम्बन्धियों के बड़प्पन तथा शान-बान पर मुझे सदा गर्व रहा है। अब मैं मुहल्ले के लोगों को पहले से भी तुच्छ समझने लगा। मैं किसी से सीधे मुँह बात नहीं करता। किसी की ओर ठीक से देखता भी नहीं था। दूसरे के बच्चों को मामूली-सी शरारत पर डाँट-डपट देता। कई बार पड़ोसियों को सुना चुका था—जिसके पास कलेजा है, वही आजकल नौकर रख सकता है। घर के सवांग की तरह रहता है। निर्मला भी सारे मुहल्ले में शुभ सूचना दे आयी थी—आधी तनखाह तो नौकर पर ही खर्च हो रही है, पर रुपया-पैसा कमाया किसलिए जाता है? ये तो कई बार कह ही चुके थे कि तुम्हारे लिए दुनिया के किसी कोने से नौकर जरूर लाऊँगा.....वही हुआ।

निःसन्देह बहादुर की वजह से सबको खूब आराम मिल रहा था। घर खूब साफ और चिकना रहता। कपड़े चमाचम सफेद। निर्मला की तबीयत भी काफी सुधर गयी। अब कोई एक खर भी न टसकाता था। किसी को मामूली-से-मामूली काम करना होता, तो वह बहादुर को आवाज देता। 'बहादुर, एक गिलास पानी।' 'बहादुर, पेंसिल नीचे गिरी है, उठाना।' इसी तरह की फरमाइशें! बहादुर घर में फिरकी की तरह नाचता रहता। सभी रात में पहले ही सो जाते थे और सबेरे आठ बजे के पहले न उठते थे।

मेरा बड़ा लड़का किशोर काफी शान-शौकत और रोब-दाब से रहने का कायल था और उसने बहादुर को अपने कड़े

अनुशासन में रखने की आवश्यकता महसूस कर ली थी। फलतः उसने अपने सभी काम बहादुर को सौंप दिये। सबेरे उसके जूते में पालिश लगनी चाहिए। कालेज जाने के ठीक पहले साइकिल की सफाई जरूरी थी। रोज ही उसके कपड़ों की धुलाई और इस्त्री होनी चाहिए। और रात में सोते समय वह नित्य बहादुर से अपने शरीर की मालिश कराता और मुक्की भी लगवाता। पर इतनी सारी फरमाइशों की पूर्ति में कभी-कभी कोई गड़बड़ी भी हो जाती। जब ऐसा होता, किशोर गर्जन-तर्जन करने लगता, उसको बुरी-बुरी गालियाँ देता और उस पर हाथ छोड़ देता। मार खाकर बहादुर एक कोने में खड़ा हो जाता—चुपचाप।

—देख बे—किशोर चेतावनी देता—मेरा काम सबसे पहले होना चाहिए। अगर एक काम भी छूटा तो मारते-मारते हुलिया टाइट कर दूँगा। साला, कामचोर, करता क्या है तू? बैठा-बैठा खाता है।

रोज ही कोई-न-कोई ऐसी बात होने लगी, जिसकी रिपोर्ट पत्नी मुझे देती थी। मैंने किशोर को मना किया, पर वह नहीं माना तो मैंने यह सोचकर छोड़ दिया कि थोड़ा बहुत तो यह चलता ही रहता है। फिर एक हाथ से ताली कहाँ बजती है? बहादुर भी बदमाशी करता होगा। पर एक दिन जब मैं दफ्तर से आया तो मैंने किशोर को एक डण्डे से बहादुर की पिटाई करते हुए देखा। निर्मला कुछ दूरी पर खड़ी होकर 'हाँ-हाँ' कहती हुई मना कर रही थी।

मैंने किशोर को डाँटकर अलग किया। कारण यह था कि शाम को साइकिल की सफाई करना बहादुर भूल गया था। किशोर ने उसको मारा तथा गालियाँ दीं तो उसने उसका काम करने से ही इन्कार कर दिया।

—तुम साइकिल साफ क्यों नहीं करते?—मैंने उससे कड़ाई से पूछा।

—बाबूजी, भैया ने मेरे मरे बाप को क्यों लाकर खड़ा किया?—वह रोते हुए बोला।

मैं जानता था कि किशोर उसको और भी भद्दी गालियाँ देता था, लेकिन आज उसने 'सूअर का बच्चा' कहा था, जो उसे बरदाश्त न हुआ। निस्सन्देह वह गाली उसके बाप पर पड़ती थी। मुझे कुछ हँसी आ गयी। खैर, किशोर के व्यवहार को अच्छा नहीं कहा जा सकता, पर गृहस्वामी होने के कारण मुझ पर कुछ और गम्भीर दायित्व भी थे।

मैंने उसे समझाया—बहादुर, ये आदतें ठीक नहीं। तुम ठीक से काम करोगे तो तुमको कोई कुछ भी नहीं कहेगा। मेहनत बहुत अच्छी चीज है, जो उससे बचने की कोशिश करता है, वह कुछ भी नहीं कर सकता। रूठना-फूलना मुझे सख्त नापसन्द है। तुम तो घर के लड़के की तरह हो। घर के लड़के मार नहीं खाते? हम तुमको जिस सुख आराम से रखते हैं, वह कोई क्या रखेगा? जाकर दूसरे घरों में देखो तो पता लगे। नौकर-चाकर भरपेट भोजन के लिए तरसते रहते हैं। चलो, सब खत्म हुआ, अब काम-धाम करो.....

वह चुपचाप सुनता रहा। फिर हाथ-मुँह धोकर काम करने लगा। जल्दी वह प्रसन्न भी हो गया। रात में सोते समय वह अपनी टोपी पहनकर देर तक गाता रहा।

लेकिन कुछ दिनों बाद एक और भी गड़बड़ी शुरू हुई। निर्मला बहुत पतली-पतली रोटियाँ सेंकती थी, इसलिए वह रोटी बनाने का काम कभी भी बहादुर से नहीं लेती थी। लेकिन मुहल्ले की किसी औरत ने उसे यह सिखा दिया कि परिवार के लिए रोटियाँ बनाने के बाद वह बहादुर से कहे कि वह अपनी रोटी खुद बना लिया करे, नहीं तो नौकर-चाकर की आदत खराब हो जाती है, महीन खाने से उसकी आदत बिगड़ जाती है।

यह बात निर्मला को जँच गयी थी और रात में उसने ऐसा ही प्रयोग किया। वह अपनी रोटियाँ बनाकर चौके में से उठ गयी। बहादुर का मुँह उतर गया। वह चूल्हे के पास सिर झुकाकर चुपचाप खड़ा रहा।

—क्या हो गया, रे?—निर्मला ने पूछा।

वह कुछ नहीं बोला।

—चल, चुपचाप बना अपनी रोटियाँ। तू सोचता है कि मैं तुझे पतली-पतली, नरम-नरम रोटियाँ सेंक कर खिलाऊँगी? तू कोई घर का लड़का है? नौकर-चाकर तो अपना बनाकर खाते ही रहते हैं। तीता तो इनको इसलिए लग रहा है कि सारे घर के लिए मैंने रोटियाँ बनायीं, इनको अलग करके इनके साथ भेद क्यों किया? वाह रे, इसके पेट में तो लम्बी दाढ़ी है! समझ जा, रोटियाँ नहीं सेंकेगा तो भूखा रहेगा।

पर बहादुर उसी तरह खड़ा रहा तो निर्मला का गुस्से से बुरा हाल हो गया। उसने लपककर उसके माथे पर दो-तीन थप्पड़ जड़ दिये—सूअर कहीं के! इसीलिए तुझे किशोर मारता है। इसी वजह से तेरी माँ भी मारती होगी। चल बना रोटी.....

—मैं नहीं बनाऊँगा। मेरी माँ भी सारे घर की रोटियाँ बनाकर मुझसे रोटी सेंकवाती थी—वह रोने लगा था।

—तो क्या मैं तेरी माँ हूँ कि तू मुझसे जिद्द कर रहा है? घर के लड़कों के बराबर बन रहा है? मारते-मारते मुँह रँग दूँगी।

पर उसने अपने लिए रोटी नहीं बनायी। मुझे भी बड़ा गुस्सा आया। मैंने उसको डाँटा और समझाया। पर वह नहीं माना। रात भर वह भूखा ही रहा।

पर सबेरे उठकर वह पहले की तरह ही हँसने लगा। उसने अँगीठी जलाकर अपने लिए रोटियाँ सेंकी। अपनी बनायी मोटी और भद्दी रोटियों को देखकर वह खिलखिलाने लगा। फिर रात की बची हुई सब्जी से उसने खाना खा लिया।

लेकिन निर्मला का भी हाथ खुल गया था। वह उससे कुछ चिढ़ भी गयी थी। अब बहादुर से कोई भी गलती होती तो वह उस पर हाथ चला देती। उसको मारनेवाले अब घर में दो व्यक्ति हो गये थे और कभी-कभी एक गलती के लिए उसको दोनों मारते।

बरसात बीत गयी थी। आकाश दर्पण की तरह स्वच्छ दिखायी देता। मैंने बहादुर की माँ के पास चिट्ठी लिखी थी कि उसका लड़का मेरे पास मजे में है और मैं उसकी तनखाह के पैसे उसके पास भेज दिया करूँगा, लेकिन कई महीने के बाद भी उधर से कोई जवाब नहीं आया था। मैंने बहादुर से कह दिया था कि उसका पैसा यहाँ जमा रहेगा, जब वह घर जायेगा तो लेता जायेगा।

पर अब बहादुर से भूल-गलतियाँ अधिक होने लगी थीं। शायद इसका कारण मार-पीट और गाली-गलौज हो। मैं कभी-कभी इसको रोकना चाहता, फिर यह सोचकर चुप लगा जाता कि नौकर-चाकर तो मार-पीट खाते ही रहते हैं।

एक दिन रविवार को मेरी पत्नी के एक रिश्तेदार आये। वह बीबी-बच्चों के साथ थे। वह अपने किसी खास सम्बन्धी के यहाँ आये थे, तो यहाँ भी भेंट-मुलाकात करने के लिए चले आये थे। घर में बड़ी चहल-पहल मच गयी। मैं बाजार से रोहू मछली और देहरादूनी चावल ले आया। नाश्ता-पानी के बाद बातों की जलेबी छनने लगी। पर इसी समय एक घटना हो गयी।

अचानक उस रिश्तेदार की पत्नी नीचे फर्श पर झुककर देखने लगीं। फिर उन्होंने चारपाई के अन्दर झाँककर देखा। अन्त में कमरे के अन्दर गयीं और फर्श पर पड़े हुए कागजों को उठाकर जाँच-पड़ताल करने लगीं।

—क्या बात है?—मैंने पूछा।

रिश्तेदार की पत्नी जबरदस्ती मुस्कराकर मजबूरी में सिर हिलाते हुए बोली—क्या बतायें.....ग्यारह रुपये साड़ी के खूँट से निकालकर यहीं चारपाई पर रखे.....पर वे मिल नहीं रहे हैं.....

—आपको ठीक याद है न.....।

—हाँ-हाँ—खूब अच्छी तरह याद है। ये रुपये मैंने खूँट में बाँधकर रखे थे, रिक्शेवाले को देने के लिए खूँट खोला ही था, फिर वे रुपये चारपाई पर रख दिये थे कि चार रुपये की मिठाई मँगा लूँगी और कुछ बच्चों के हाथ पर रख दूँगी। रास्ते में कोई ढंग की दूकान नहीं मिली थी, नहीं तो उधर से ही लाती। किसी के यहाँ खाली-हाथ जाने में अच्छा भी नहीं लगता। बताइए, अब तो मैं कहीं की न रही।—फिर मेरी ओर झुककर धीमे स्वर में कहा था—जरा उससे पूछिए न! वह इधर आया था। कुछ देर तक वह यहाँ खड़ा रहा, फिर तेजी से बाहर चला गया था।

—अरे नहीं, वह ऐसा नहीं है,—मैंने कहा।

—यू डू नाट नो—दीज पीपुल आर एक्सपर्ट इन दिस आर्ट—रिश्तेदार ने कहा।

मैंने बहादुर की ओर तिरछी दृष्टि से देखा। वह सिर झुकाकर आटा गूँध रहा था। उसके चेहरे पर सन्तुष्टि एवं प्रफुल्लता थी। उसने ऐसा काम तो कभी नहीं किया, बल्कि जब कभी उसने दो-चार आने इधर-उधर पड़े देखे, तो उठाकर निर्मला के हाथ में दे दिये थे। पर किसी के दिल की बात कोई कैसे जान सकता है। न मालूम अचानक मुझे क्या हो गया और मैं गुस्से में आ गया।

—बहादुर! —मैंने कड़े स्वर में कहा।

—जी, बाबूजी।

—इधर आओ।

वह आकर खड़ा हो गया।

—तुमने यहाँ से रुपये उठाये थे?

—जी नहीं, बाबूजी!—उसने निर्भय उत्तर दिया।

—ठीक बताओ.....मैं बुरा नहीं मानूँगा।

—नहीं बाबूजी। मैं लेता, तो बता देता।

—तुम यहाँ खड़े नहीं थे?—रिश्तेदार की पत्नी ने कहा—फिर तेजी से बाहर चले गये। देखो भैया, सच-सच बता दो। मिठाई खरीदने और बच्चों को देने के लिए ये रुपये रखे थे। मैं तो बुरी फँसी। अब वापस जाने के लिए रिक्शे के भी पैसे नहीं।

—मैं तो बाहर नमक लेने गया था।

—सच-सच बता बहादुर! अगर नहीं बतायेगा तो बहुत पीटूँगा और पुलिस के सुपुर्द कर दूँगा—मैं चिल्ला पड़ा।

—मैंने नहीं लिया, बाबूजी—बहादुर का मुँह काला पड़ गया था।

पता नहीं मुझे क्या हो गया। मैंने सहसा उछलकर उसके गाल पर एक तमाचा जड़ दिया। मैं आशा कर रहा था कि ऐसा करने से वह बता देगा। तमाचा खाकर वह गिरते-गिरते बचा। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे।

—मैंने नहीं लिया.....

इसी समय रिश्तेदार साहब ने एक अजीब हरकत की—अच्छा छोड़िये, इसको पुलिस के पास ले जाता हूँ।—इतना कहकर उन्होंने बहादुर का हाथ पकड़ लिया और उसको दरवाजे की ओर घसीटकर ले गये। पर दरवाजे के पास उससे धीरे से बोले—देखो, तुम मुझे बता दो.....मैं कुछ नहीं करूँगा, बल्कि तुमको इनाम में दो रुपये दे दूँगा।

पर बहादुर ने इन्कार कर दिया। इसके बाद रिश्तेदार साहब दो-तीन बार उसको दरवाजे की ओर खींचकर ले गये, जैसे पुलिस को देने जा रहे हैं। लेकिन आगे बढ़कर वह रुक जाते और उससे धीमे-धीमे शब्दों में पूछ-ताछ करने लगे।

अन्त में हारकर उन्होंने उसको छोड़ दिया और वापस आकर चारपाई पर बैठते हुए हँसकर बोले—जाने दीजिये....ये सब बड़े घाघ होते हैं। किसी झाड़ी-वाड़ी में छिपा आया होगा या जमीन में गाड़ आया होगा। मैं तो इन सबों को खूब जानता हूँ। भालू-बन्दर से कम थोड़े होते हैं ये। चलिये, इतना नुकसान लिखा था।

इसके बाद निर्मला ने भी उसको डराया-धमकाया और दो चार तमाचे जड़ दिये, पर वह 'नहीं-नहीं' करता रहा।

इस घटना के बाद बहादुर काफी डाँट-मार खाने लगा। घर के सभी लोग उसको कुत्ते की तरह दुरदुराया करते। किशोर तो जैसे उसकी जान के पीछे पड़ गया था। वह उदास रहने लगा और काम में लापरवाही करने लगा।

एक दिन मैं दफ्तर से विलम्ब से आया। निर्मला आँगन में चुपचाप सिर पर हाथ रखकर बैठी थी। अन्य लड़कों का पता नहीं था, केवल लड़की अपनी माँ के पास खड़ी थी। अँगीठी अभी नहीं जली थी। आँगन गंदा पड़ा था। बर्तन बिना मले हुए रखे थे। सारा घर जैसे काट रहा था।

—क्या बात है?—मैंने पूछा।

—बहादुर भाग गया।

—भाग गया! क्यों?

—पता नहीं। आज तो कुछ हुआ भी नहीं था। सबेरे से ही बड़ा प्रसन्न था। हमेशा 'माताजी माताजी' किये रहा। दोपहर में खाना खाया। उसके बाद आँगन से सिल-बट्टा लेकर बरामदे में रखने जा रहा था कि सिल हाथ से छूटकर गिर गयी और दो टुकड़े हो गयी। शायद इसी डर से वह भाग गया कि लोग मारेंगे। पर मैं इसके लिए उसको थोड़े कुछ कहती? क्या बताऊँ, मेरी किस्मत में आराम ही नहीं.....।

—कुछ ले गया?

—यही तो अफसोस है। कोई भी सामान नहीं ले गया है। उसके कपड़े, उसका बिस्तरा, उसके जूते—सभी छोड़ गया है। पता नहीं उसने हमें क्या समझा? अगर वह कहता तो मैं उसे रोकती थोड़े? बल्कि उसको खूब अच्छी तरह पहना-ओढ़ाकर भेजती, हाथ में उसकी तनखाह के रुपये रख देती। दो-चार रुपये और अधिक दे देती। पर वह तो कुछ ले ही नहीं गया.....

—और वे ग्यारह रुपये?

—अरे वह सब झूठ है। मैं तो पहले ही जानती थी कि वे लोग बच्चों को कुछ देना नहीं चाहते, इसलिए अपनी गलती और लाज छिपाने के लिए वह प्रपंच रच रहे हैं। उन लोगों को क्या मैं जानती नहीं? कभी उनके रुपये रास्ते में गुम हो जाते हैं.....कभी वे गलती से घर पर छोड़ आते हैं। मेरे कलेजे में तो जैसे कुछ हौंड़ रहा है। किशोर को भी बड़ा अफसोस है। उसने सारा शहर छान मारा, पर बहादुर नहीं मिला। किशोर आकर कहने लगा—अम्माँ, एक बार भी अगर बहादुर आ जाता तो मैं उसको पकड़ लेता और कभी जाने न देता। उससे माफी माँग लेता और कभी नहीं मारता। सच, अब ऐसा नौकर कभी नहीं मिलेगा। कितना आराम दे गया है वह। अगर वह कुछ चुराकर ले गया होता तो सन्तोष हो जाता।

निर्मला आँखों पर आँचल रखकर रोने लगी। मुझे बड़ा क्रोध आया। मैं चिल्लाना चाहता था, पर भीतर-ही-भीतर मेरा कलेजा जैसे बैठ रहा हो। मैं वहीं चारपाई पर सिर झुकाकर बैठ गया। मुझे एक अजीब-सी लघुता का अनुभव हो रहा था। यदि मैं न मारता, तो शायद वह न जाता।

मैंने आँगन में नजर दौड़ाई। एक ओर स्टूल पर उसका बिस्तरा रखा था। अलगनी पर उसके कुछ कपड़े टँगे थे। स्टूल के नीचे वह भूरा जूता था, जो मेरे साले साहब के लड़के का था। मैं उठकर अलगनी के पास गया और उसके नेकर की जेब में हाथ डालकर उसके सामान निकालने लगा—वही गोलियाँ, पुराने ताश की गड्डी, खूबसूरत पत्थर, ब्लेड, कागज की नावें....।

अभ्यास प्रश्न

1. ''अमरकान्त की अधिकांश कहानियाँ प्रगतिशील जीवन-दृष्टि की परिचायक हैं''—'बहादुर' कहानी के आधार पर इस कथन की सत्यता प्रमाणित कीजिए।
2. समस्यामूलक कहानी के कला-पक्ष पर प्रकाश डालते हुए बताइए कि 'बहादुर' कहानी में किस समस्या को उठाया गया है?
3. बहादुर के घर में आने के बाद निर्मला और किशोर के स्वभाव और व्यवहार में क्या परिवर्तन आये? इसके कारणों की व्याख्या कीजिए।
4. इस कहानी का मुख्य सन्देश क्या है?
5. ''किसी चीज की अति बुरी होती है''—'बहादुर' कहानी के आधार पर उसकी समीक्षा कीजिए।
6. अमरकान्त की भाषा-शैली की विशेषताएँ लिखिए।
7. 'बहादुर' कहानी का सारांश अपने शब्दों में प्रस्तुत कीजिए। **[2020 ZH, ZI, ZN]**

अथवा 'बहादुर' कहानी की कथावस्तु प्रस्तुत कीजिए। **[2016 SC, 20 ZI]**

8. 'बहादुर' कहानी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए। **[2020 ZK, ZL, ZM]**
9. कहानी-कला की दृष्टि से 'बहादुर' कहानी की समीक्षा कीजिए। **[2020 ZA, ZC, ZD, ZE]**
10. 'बहादुर' कहानी के मुख्य पात्र 'दिलबहादुर' का चरित्र-चित्रण कीजिए। **[2016 SB]**

अथवा 'बहादुर' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्रांकन कीजिए।

अथवा 'बहादुर' कहानी के प्रमुख पात्र की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। **[2016 SF, 17 MF, MG, 19 CO]**

11. कहानी के तत्त्वों के आधार पर 'बहादुर' कहानी की समीक्षा कीजिए। **[2016 SB, SD, 17 MC, MD, ME]**
12. 'बहादुर' कहानी की प्रमुख स्त्री पात्र निर्मला का चरित्र-चित्रण कीजिए।
13. 'बहादुर' कहानी की कथोपकथन की दृष्टि से समीक्षा कीजिए।
14. 'बहादुर' कहानी के नायक के चरित्र पर प्रकाश डालिए।
15. 'बहादुर' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए। **[2019 CL, CR, 20 ZB]**
16. 'बहादुर' कहानी की कथावस्तु संक्षेप में लिखिए।

अथवा 'बहादुर' कहानी की कथावस्तु पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

17. 'बहादुर' कहानी के कथानक की विवेचना कीजिए। **[2018 AA, 19 CM, CN]**
18. 'बहादुर' कहानी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
19. 'बहादुर' कहानी के वैशिष्ट्य की विवेचना कीजिए।
20. 'बहादुर' कहानी के तथ्यों पर प्रकाश डालिए। **[2019 CP, 20 ZF]**

अथवा 'बहादुर' कहानी के तथ्यों को प्रस्तुत कीजिए।

21. कथानक के आधार पर 'बहादुर' कहानी के तत्त्वों पर प्रकाश डालिए।
22. 'बहादुर' कहानी की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। **[2020 ZG]**

5 शिवप्रसाद सिंह

व्यक्तित्व

शिवप्रसाद सिंह का जन्म 19 अगस्त, 1928 ई० में वाराणसी जिले के एक किसान परिवार में हुआ था। आपके पिता का नाम चन्द्रिकाप्रसाद सिंह था। आपकी शिक्षा वाराणसी के उदयप्रताप विद्यालय और हिन्दू विश्वविद्यालय में एम० ए०, पी-एच० डी० तक हुई। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष भी रहे। आपका लेखन-क्षेत्र व्यापक रहा है। आपने आलोचना, शोध, सम्पादन, जीवनी, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि सभी दिशाओं में काम किया है। इनका निधन 28 सितम्बर, 1998 ई० को वाराणसी में हुआ।

कृतित्व

आपके पाँच कहानी-संग्रह—'**आरपार की माला**', '**कर्मनाशा की हार**', '**मुरदा सराय**', '**इन्हें भी इन्तजार है**' तथा '**भेड़िये**' प्रकाशित हो चुके हैं। एक नाटक '**घाटियाँ गूँजती हैं**' तथा दो उपन्यास '**अलग-अलग वैतरणी**' तथा '**गली आगे मुड़ती है**' भी प्रकाश में आ चुके हैं।

कथा-शिल्प एवं भाषा-शैली

शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के समसामयिक विविध पहलुओं को चित्रित किया गया है। ग्रामांचलों के प्रति आपका विशेष लगाव था। '**दादीमाँ**', '**पापजीवी**', '**बिंदा महाराज**', '**हाथ का दाग**', '**केवड़े का फूल**', '**सुबह के बादल**', '**अरुन्धती**', '**मुरदा सराय**' आदि आपकी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। मानव के प्रति आपमें गहरी संवेदना रही है—विशेषकर उस मानव के प्रति जो व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं व रूढ़ियों से ग्रस्त हो। आप समन्वयशील विचारक थे। जीवन का यथार्थ प्रस्तुत करते हुए आप उसे नैतिक समाधान देते रहे। यह नैतिकता पुराने आदर्शों से जुड़ी हुई है, किन्तु बौद्धिकता और तर्क की कसौटी पर भी खरी उतरती है। आपकी कहानियों में निम्न वर्ग के प्रतिनिधि पात्र स्थान पाते रहे हैं। चरित्र-चित्रण व्यक्तिपरक तथा मनोवैज्ञानिक होता है। बाह्य समस्याओं की पृष्ठभूमि में पात्रों के मनोद्वन्द्व को उभारने में आप विशेष कुशल थे।

कहानियों की भाषा प्रांजल है किन्तु व्यावहारिक और लोक-जीवन की शब्दावली के सटीक प्रयोग की विशेषता उसमें सर्वत्र मिलेगी। आपकी रचना-शैली सरल, सहज तथा चित्रात्मक है। रोमानी भावात्मकता और कवित्वपूर्ण वर्णनों के कारण आपकी कहानियाँ अत्यन्त मोहक और मर्मस्पर्शी हो उठी हैं।

'**कर्मनाशा की हार**' आपकी प्रसिद्ध कहानी है, जिसका अनुवाद अंग्रेजी, जर्मन, डेनिश और रूसी भाषाओं में हो चुका है। रूसी में अनूदित हिन्दी कहानियों के संकलन 'चिनगारियाँ बुझी नहीं' की भूमिका में **विक्टरवालीन** लिखते हैं—"इस कहानी की मुख्य विशेषता है नाटकीय संघर्ष तथा पुरानी पड़ती रूढ़ियों के प्रति मानवीय आदर्शों की लड़ाई का चित्रण।" भैरव पाँड़े यह बात स्वयं अनुभव करते हैं कि मानवीय सम्बन्धों के संघर्षमय सन्दर्भ में असली मानवता क्या है।

कर्मनाशा की हार

(1)

काले साँप का काटा आदमी बच सकता है, हलाहल जहर पीनेवाले की मौत रुक सकती है, किन्तु जिस पौधे को एक बार कर्मनाशा का पानी छू ले, वह फिर हरा नहीं हो सकता। कर्मनाशा के बारे में किनारे के लोगों में एक और विश्वास प्रचलित था कि यदि एक बार नदी बढ़ आये तो बिना मानुस की बलि लिये लौटती नहीं। हालाँकि थोड़ी ऊँचाई पर बसे हुए नयीडीह वालों को इसका कोई खौफ न था; इसी से वे बाढ़ के दिनों में, गेरू की तरह फैले हुए अपार जल को देखकर खुशियाँ मनाते, दो-चार दिन की यह बाढ़ उनके लिए तब्दीली बनकर आती, मुखिया जी के द्वार पर लोग-बाग इकट्ठे होते और कजली-सावनी की ताल पर ढोलकें ठनकने लगतीं। गाँव के दुधमुँहे तक 'ई बाढ़ी नदिया जिया लेके माने' का गीत गाते, क्योंकि बाढ़ उनके किसी आदमी का जिया नहीं लेती थी। किन्तु पिछले साल अचानक जब नदी का पानी समुद्र के ज्वार की तरह उमड़ता हुआ नयीडीह से जा टकराया, तो ढोलकें बह चलीं, गीत की कड़ियाँ मुरझाकर होंठों में पपड़ी की तरह छा गयीं, सोखा ने जान के बदले जान देकर पूजा की, पाँच बकरों की दौरी भेंट हुई, किन्तु बढ़ी नदी का हौसला कम न हुआ। एक अन्धी लड़की, एक अपाहिज बुढ़िया बाढ़ की भेंट रहीं। नयीडीह वाले कर्मनाशा के इस उग्र रूप से काँप उठे, बूढ़ी औरतों ने कुछ सुराग मिलाया। पूजा-पाठ कराकर लोगों ने पाप-शान्ति की।

एक बाढ़ बीती, बरस बीता। पिछले घाव सूखे न थे कि भादों के दिनों में फिर पानी उमड़ा। बादलों की छाँव में सोया गाँव भोर की किरण देखकर उठा तो सारा सिवान रक्त की तरह लाल पानी से घिरा था। नयीडीह के वातावरण में हौलदिली छा गयी। गाँव ऊँचे अरार पर बसा था, जिस पर नदी की धारा अनवरत टक्कर मार रही थी। बड़े-बड़े पेड़ जड़-मूल के साथ उलटकर नदी के पेट में समा रहे थे। यह बाढ़ न थी, प्रलय का सन्देश था। नयीडीह के लोग चूहेदानी में फँसे चूहे की तरह भय से दौड़-धूप कर रहे थे। सबके चेहरे पर मुर्दनी छा गयी थी।

'कल दीनापुर में कड़ाह चढ़ा था पाँड़े जी', ईसुर भगत हकलाते हुए बोला। कुएँ की जगत् से बाल्टी का पानी लिये जगेसर पाँड़े उतर रहे थे। घबड़ाकर बाल्टी सहित ऊपर से कूद पड़े।

'क्या कह रहे थे भगत, कड़ाह चढ़ा था, क्या कहा सोखा ने?' चौराहे पर छोटी-सी भीड़ इकट्ठी हो गयी। भगत अपने शब्दों को चुभलाते हुए बोले : 'काशीनाथ की सरन, भाई लोगों, सोखा ने कहा कि इतना पानी गिरेगा कि तीन घड़े भर जायेंगे, आदमी-मवेशी की छय होगी, चारों ओर हाहाकर मच जायेगा, परलय होगी।'

'परलय न होगी, तब क्या बरक्कत होगी? हे भगवान, जिस गाँव में ऐसा पाप करम होगा वह बहेगा नहीं, तब क्या बचेगा?' माथे के लुग्गे को ठीक करती हुई धनेसरा चाची बोली, मैं तो कहूँ कि फुलमतिया ऐसी चुप काहे है। राम रे राम, एक ने पाप किया, सारे गाँव के सिर बीता। उसकी माई कैसी सतवन्ती बनती थी। आग लाने गयी तो घर में जाने नहीं दिया। मैं तो तभी छनगी कि हो न हो दाल में कुछ काला है।'

'कुछ साफ भी कहोगी भौजी' बीच में जगेसर पाँड़े बोले, 'क्या हुआ आखिर...?'

'हुआ क्या, विधवा लड़की बेटा पैदाकर सुहागिन बनी है।'

'ऐं, कब हुआ....' 'सबकी आँखों में उत्सुकता के फफोले उभर आये। आगत भय से सबकी साँसें टँगी रह गयीं। तभी मिर्चे की तरह तीखी आवाज में चाची बोलीं—'कोई आज की बात है? तीन दिन हो गये।'

लोगों को परलय की सूचना देकर, हवा में उड़ते हुए आँचल को बरजोरी बस में करती चाची चौराहे की ओर बढ़ चली। गाँव का सारा आतंक, भय, पाप उनके पीछे कुत्ते की तरह दुम दबाये चले जा रहे थे। सबकी आँखों में नयीडीह का भविष्य था, रक्त की तरह लाल पानी में चूहे की तरह ऊभ-चूभ करते हुए लोग चिल्ला रहे थे। मौत का ऐसा भयंकर स्वप्न भी शायद ही किसी ने देखा था।

(2)

भैरो पाँड़े बैसाखी के सहारे अपनी बखरी के दरवाजे में खड़े बाढ़ के पानी का जोर देख रहे, अपार जल में बहते हुए साँप-बिच्छू चले जा रहे थे। मरे हुए जानवर की पीठ पर बैठा कौवा लहर के धक्के से बिछल जाता, भीगे चूहे पानी से बाहर निकलते तो चील झपट पड़ते। विचित्र दृश्य है—पाँड़े न जाने क्यों बुदबुदाये। फिर मिट्टी की बनी पुरानी बखरी की ओर देखा। पाँड़े के

दादा देस-दिहात के नामी-गिरामी पण्डित थे। उनका ऐसा अकबाल था कि कोई किसी को कभी सताने की हिम्मत नहीं करता था। उनकी बनवायी है यह बखरी। भाग की लेख कौन टारे। दो पुश्त के अन्दर ही सभी कुछ खो गया, मुट्ठी में बन्द जुगुनू हाथ के बाहर निकल गया और किसी ने जाना भी नहीं। आज से सोलह साल पहले माँ-बाप एक नन्हा लड़का हाथ में सौंपकर चले गये, पैर से पंगु भैरो पाँड़े अपने दो बरस के छोटे भाई को कन्धे से चिपकाये असहाय, निरवलम्ब खड़े रह गये—धन के नाम पर बाप का कर्ज मिला, काम-धाम के लिए दुधमुँहे भाई की देख-रेख, रहने के लिए बखरी जिसे पिछली बाढ़ के धक्कों ने एकदम जर्जर कर दिया है।

'अब यह भी न बचेगी'—पाँड़े के मुँह से भवितव्य फूट रहा था, जिसकी भयंकरता पर उन्होंने जरा भी ख्याल करना जरूरी नहीं समझा। दरारों से भरी दीवालें उनके खुरदरे हाथों के स्पर्श से पिघल गयीं, वर्षा का पानी पसीज कर हाथों में आँसू की तरह चिपक गया।

सनसनाती हवा गाँव के इस छोर से उस छोर तक चक्कर लगा रही थी। भैरो पाँड़े के कानों में आवाज के स्पर्श से ही भयंकर पीड़ा पैदा हो गयी। बैसाखी उनके शरीर के भार को सँभाल न सकी और वे धम्म से चौकठ पर बैठ गये। बाजू के धक्के से कुहनी छिल गयी, चिनचिनाती कुहनी का दर्द उनके रोयें-रोयें में बिंध रहा था और पाँड़े इस पीड़ा को होंठों के बीच दबाने का प्रयत्न कर रहे थे।

'सब कुछ गया'—वे बुदबुदाये। कर्मनाशा की बाढ़ उनकी इस जर्जर बखरी को हड़पने नहीं, उनके पितामह की उस अमूल्य प्रतिष्ठा को हड़पने आयी है जिसे अपनी इस विपन्न अवस्था में भी पाँड़े ने धरती पर नहीं रखा। दुलार से पली वह प्रतिष्ठा सदा उनके कन्धे पर चढ़ी रही। 'मैं जानता था कि यह छोकरा इस खानदान का नाश करने आया है'—पाँड़े की आँखों में उनके छोटे भाई की तस्वीर नाच उठी। अठारह वर्ष का छरहरा पानीदार कुलदीप जिसकी आँखों में भैरो को माँ की छाया तैरती नजर आती, उसके काले काकुल को देखकर मुखिया जी कहते कि इस पर भैरो पाँड़े के दादा की लौछार पड़ी है। पाँड़े हो-हो कर हँस पड़ते। 'जा रे कुलदीप, बरामदे में बैठकर पढ़' भैरो पाँड़े मन में बुदबुदाते—'तेरे आँख में सौ कुण्ड बालू, हरामी कहीं का, लड़के पर नजर गड़ाता है, कुछ भी हुआ इसे तो भगवान कसम तेरा गला घोट दूँगा, बड़ा आया मुखिया जी' फिर जरा बढ़ के बोलते—'क्या लौछार पड़ेगी मुखिया जी, दादा के पास तो पाँच पछाही गायें थीं, एक से एक, दो थान दुह ले तो पँचसेरी बाल्टी भर जाती थी। यहाँ तो इस लौंडे को दूध पचता ही नहीं। फिर साल-बारह महीने हमेशा मिलता भी कहाँ है हम गरीबों को?'

'अब वह पुराने जमाने की बात कहाँ रही पाँड़े जी' मुखिया कहता और अपने संकेतों से शब्दों में मिर्चे की तिताई भरकर चला जाता। काले-काले काकुलोंवाला नवजवान कुलदीप उसे फूटी आँखों नहीं सुहाता, किन्तु भैरो पाँड़े के डर से वह कुछ कह न पाता।

भैरो पाँड़े दिन भर बरामदे में बैठकर रुई के बिनौले निकालते; तूँमते, सूत तैयार करते और अपनी तकली नचा-नचाकर जनेऊ बनाते, जजमानी चलाते, पत्रा देख देते, सत्यनारायण की कथा बाँच देते और इससे जो कुछ मिलता कुलदीप की पढ़ाई और उसके कपड़े-लत्ते आदि में खर्च हो जाता।

यह सब कुछ मर-मरकर किया था इसी दिन को—पाँड़े की आँखों में प्यास छा गयी, लड़के ने उन्हें किसी ओर का नहीं रखा। आज यहाँ आफत मची है, अपने पता नहीं कहाँ भाग कर छिपा है।

'राम जाने कैसे हो' सूखी आँखों से दो बूँदें गिर पड़ीं, 'अपने से तो कौर भी नहीं उठा पाता था, भूखा बैठा होगा कहीं, बैठे—मरे हम क्या करें।' पाँड़े ने बैसाखी उठायी। बगल की चारपाई तक गये और धम्म से बैठ गये। दोनों हाथों में मुँह छिपा लिया और चुप लेटे रहे।

(3)

पूरबी आकाश पर सूरज दो लट्ठे ऊपर चढ़ आया था। काले-काले बादलों की दौड़-धूप जारी थी, कभी-कभी हल्की हवा के साथ बूँदें बिखर जातीं। दूर किनारों पर बाढ़ के पानी की टकराहट हवा में गूँज उठती। भैरो पाँड़े उसी तरह चारपाई पर लेटे आँगन की ओर देख रहे थे। बीचोबीच आँगन के तुलसी-चौरा था, जो बरसात के पानी से कटकर खुरदरा हो गया था। पुराने पौधे के नीचे कई मासूम मरकती पत्तियोंवाले छोटे-छोटे पौधे लहराने लगे थे। वर्षा की बूँदें पुराने पौधे की सख्त पत्तियों पर टकराकर बिखर जातीं, टूटी हुई बूँदों की फुहार धीरे से मासूम पौधों पर फिसल जाती, कितने आनन्दमग्न थे वे मासूम पौधे। पाँड़े की आँखों

के सामने कातिक की वह शाम भी नाच उठी। दो बरस पहले की बात होगी। शाम के समय जब वे बरामदे में लेटे थे, फुलमत आयी, अपनी बाल्टी माँगने, सुबह भैरो पाँड़े ले आये थे किसी काम से।

'कुलदीप, जरा भीतर से बाल्टी दे देना' कहा था पाँड़े ने। सफेद साड़ी में लिपटी-लिपटाई गुड़िया की तरह फुलमत आँगन में इसी चौरे के पास आकर खड़ी हो गयी थी। और बाल्टी उठाने के लिए जब कुलदीप झुका था तो फुलमत भी अपने दोनों हाथों से आँचल का खूँट पकड़कर तुलसीजी की वन्दना करने के लिए झुकी थी। कुलदीप के झटके से उठने पर वह उसकी पीठ से टकरा गयी थी अचानक। तब न जाने क्यों दोनों मुस्करा उठे थे। भैरो पाँड़े क्रोध से तिलमिला गये थे। वे गुस्से के मारे चारपाई से उठे तो देखा कि कुलदीप बाल्टी लिये खड़ा था और फुलमत तुलसी चौरे पर सिर रखकर प्रार्थना कर रही थी। न जाने क्यों पाँड़े की आँखें भर आयीं। बरसात के दिनों के बाद इस खुरदरे चौरे को उनकी माँ पीली मिट्टी के लेपन से सँवार देतीं, फिर श्वेत बलुई माटी से पोतकर सफेद कर देतीं। शाम को सूखे हुए चबूतरे पर घी के दीपक जलाकर, माथा टेककर वे लड़कों के मंगल के लिए विनय करतीं। तब वे भी ऐसे ही झुककर आशीर्वाद माँगतीं और पाँड़े बगल में चुपचाप खड़े दियों का जलना देखा करते थे।

पाँड़े को सामने खड़ा देख कुलदीप हड़बड़ाया और फुलमत बाल्टी लेकर चुपचाप बाहर चली गयी। पाँड़े के चेहरे पर एक विचित्र भाव था, जिसे सँभाल सकने की ताकत उन दोनों के मन में न थी, और दोनों ही भय की कम्पन लिए इधर-उधर भाग खड़े हुए।

बहुत दिनों तक पाँड़े के चेहरे पर अवसाद का यह भाव बना रहा। कुलदीप डर के मारे उनकी ओर देख नहीं पाता, न तो पहले जैसी जिद कर सकने की हिम्मत होती, न तो हँसी के कलरव से घर के कोने-कोने को गुंजान बनाने का साहस। पाँड़े ने अपने दिल को समझाया, इसे लड़कों का क्षणिक खिलवाड़ समझा। सोचा, धरती की छाती बड़ी कड़ी है। ठेस लगते ही सारी गुलाबी पंखुरियाँ बिखर जायेंगी, दोनों को दुनिया का भाव-ताव मालूम हो जायेगा।

पाँड़े के रुख से फुलमत भी सशंक हो गयी थी, वह इधर कम आती। कुलदीप के उठने-बैठने, पढ़ने-लिखने पर पाँड़े की कड़ी नजर थी। वह किताब खोलकर बैठता तो दिये की टेम में श्वेत वस्त्रों से लिपटी फुलमत खड़ी हो जाती, पुस्तक के पन्ने खुले रह जाते और वह एकटक दीये की लौ की ओर देखता रह जाता। पाँड़े को उसकी यह दशा देखकर बड़ा क्रोध आता, पर कुछ कहते नहीं।

'कुलदीप' को एक बार टोक भी दिया था—'क्या देखते रहते हो इस तरह, तबीयत तो ठीक है न।'

'जी' इतना ही कहा था कुलदीप ने, और फिर पढ़ने लग गया था। दिये की टेम कुलदीप के चेहरे पर पड़ रही थी, जिसके पीछे घने अन्धकार में लेटे पाँड़े क्रोध, मोह और न जाने कितने प्रकार के भावों के चक्कर में झूल रहे थे। उन्हें फुलमत पर बेहद गुस्सा आता। रीमल मल्लाह की यह विधवा लड़की मेरा घर चौपट करने पर क्यों लगी है। पता नहीं कहाँ से बह-दह कर यहाँ आकर बस गये। कुलच्छनी, अब क्या चाहती है। बाप मरा, पति मरा, अब न जाने क्या करेगी। जाने कौन-सा मन्त्र पढ़ दिया। यह कबूतर की तरह मुँह फुलाये बैठा रहता है। न पढ़ता है, न लिखता है। हँसना, खेलना, खाना—सब भूल गया। पाँड़े चारपाई से उतरकर इधर-उधर चक्कर लगाते रहे। पर कुछ निर्णय न कर सके।

समय बीतता गया। कुलदीप भी खुश नजर आता। हँसता-खेलता। पाँड़े की छाती से चिन्ता का भारी पत्थर खिसक गया। एक बार फिर उनके चेहरे पर हँसी की आभा लौटने लगी। रुई-सूत का काम फिर शुरू हुआ। गाँव के दो-चार उठल्ले-निठल्ले आकर बैठ जाते, दिन गपास्टक में बीत जाता। सुरती मल-मल ताल ठोंकते, और पिच् से थूककर किसी को गाली देते या निन्दा करते। इन सब चीजों से वास्ता न रखते हुए भी पाँड़े सुनते जाते। उनका मन तो चक्कर खाती तकली के साथ ही घूमता रहता, हूँ-हाँ करते जाते और निठल्लों की बातों में सन्नाटे को किसी तरह झेल ले जाते।

पाँड़े उसी चारपाई पर लेटे थे। अन्तर इतना ही था कि दिन थोड़ा और ऊपर चढ़ आया था, लहरों की टकराहट और तेज हो गयी थी, रक्त की तरह खौलता हुआ लाल पानी गाँव के थोड़ा और निकट आ गया था। उनकी नसें किसी तीव्र व्यथा से जल रही थीं। 'पाँड़े के वंश में कभी ऐसा नहीं हुआ था'—वे फुसफुसाये। बगल की दीवार में ताखे पर रामायण की गुटका रखी थी, उन्होंने उठायी, एक जगह लाल निशान लगा था। पिछले दिनों कुलदीप रात में रामायण पढ़ा करता था। जब से वह गया है आज तक गुटका खुली नहीं। पाँड़े के हाथ काँपे, गुटका उलटकर उनकी छाती पर गिर पड़ी। उठाकर खोला, वही लाल निशान—

कह सीता भा विधि प्रतिकूला॥
मिलइ न पावक मिटइ न सूला॥
सुनहु विनय मम विटप असोका॥
सत्य नाम करु हरु मम सोका॥

पाँड़े की आँखें भरभरा आयीं। झरझर आँसू गिरने लगे। हिचकी लेकर वे टूट पड़े। 'यह चुड़ैल मेरा घर खा गयी'—शब्द फूटे, किन्तु भीतर घुमड़कर रह गये। 'गाली देने से ही क्या होगा अब। इतने तक रहता तो कोई बात थी, आज उसे बच्चा हुआ है, कहीं कह दे कि लड़का कुलदीप का है तो....नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता' पाँड़े बड़बड़ाये। उन्होंने अपने बालों को मुट्ठियों में कसकर खींचा, जैसे इनकी जड़ में पीड़ा जम गयी है, खींचने से थोड़ी राहत मिलेगी। वे उठना चाहते थे, किन्तु उठ न सके। आँखों के सामने चिनगारियाँ टूटने लगीं। उन्हें आज मालूम हुआ कि वे इतने कमजोर हो गये हैं। कुलदीप के जाने के बाद से आज तक उनका जीवन अव्यवस्था की एक कहानी बनकर रह गया है। चार-पाँच महीने से कुलदीप भागा है। पहले कई दिनों तक वे जरूर बहुत बेचैन थे, किन्तु समय ने उस दुःख को भुलाने में मदद की थी। आज फिर कुलदीप उनकी आँखों के सामने आकर खड़ा हो गया। बीती घटनाएँ एक-एक कर आँखों के सामने नाचने लगीं।

चैत के दिनों में गर्मी से जली-तपी कर्मनाशा किनारे के नीचे सिमट गयी थी। नदी के पेट में दूर तक फैले हुए लाल बालू का मैदान, चाँदनी में सीपियों के चमकते हुए टुकड़े, सामने के ऊँचे अरार पर घन-पलास के पेड़ों की आरक्त पाँतें, बीच में घुग्घू, चाहों और जल-विहार करनेवाले पक्षियों का स्वर.....कगार से नदी तक बने हुए छोटे-बड़े पैरों के निशानों की दो पंक्तियाँ.....सिर्फ दो।

'तुम मुझे मझधार में लाकर छोड़ तो नहीं दोगे।' घुटन और शंका में खोये हुए धीमे स्वर। श्यामा की चीरती दर्द-भरी आवाज।

एक चुप्पी, फिर हकलाती आवाज, 'मैं अपना प्राण दे सकता हूँ, किन्तु..... तुमको.....कभी नहीं.....।'

चाँदनी की झीनी परतें सघन होती जा रही थीं, सुनसान किनारे पर भटकी हवा की सनसनाहट में आवाजों का अर्थ खो जाता, कभी हल्के हास्य की नर्म ध्वनि, कभी आक्रोश के बुलबुले, कभी उल्लास तरंग, कभी सिसकियों की सरसराहट.....।

भैरो पाँड़े एक बार चाँदनी के इस पवित्र आलोक में अपनी क्रूरता और निर्ममता पर विचार करने के लिए रुक गये, तो क्या आज तक का उनका सारा प्रयत्न निष्फल था? क्या वे असाध्य को सम्भव बनाने का ही प्रयत्न करते रहे? एक क्षण के लिए भैरो पाँड़े ने सोचा-काश फुलमत अपनी ही जाति की होती, कितना अच्छा होता वह विधवा न होती.....तुलसी चौरी की वन्दना पाँड़े के मस्तिष्क में चन्दन की सुगन्ध की तरह छा गयी। उसका रूप, चाल-चलन, संकोच सब कुछ किसी को भी शोभा देने लायक था। एक क्षण के लिए उनकी आँखों के सामने सफेद साड़ी में लिपटी फुलमत की पतली-दुबली काया हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी, जैसे वह आँचल फैलाकर आशीर्वाद माँग रही हो। भैरो पाँड़े विजड़ित खड़े थे, विमूढ़।

'यह असम्भव है' पाँड़े ने बैसाखी सँभाली और नीचे की ओर लपके।

'कुलदीप' बड़ी कर्कश आवाज थी पाँड़े की।

दोनों सिर झुकाये सामने खड़े थे, आज पहली बार पाप की साक्षी में दोनों समवेत दिखायी पड़े थे। पाँड़े फिर एक क्षण के लिए चुप हो गये।

'मैं पूछता हूँ, यह सब क्या है' पाँड़े चिल्लाये, 'इतने निर्लज्ज हो तुम दोनों', पाँड़े बढ़कर सामने आये, फुलमत की ओर मुँह फेरकर बोले 'तू इसकी जिन्दगी क्यों बिगाड़ना चाहती है? क्या तू नहीं जानती कि तू जो चाहती है वह स्वप्न में भी नहीं हो सकता, कभी नहीं, कभी नहीं।'

फुलमत चुप थी, पाँड़े दूने क्रोध से बोले, 'चुप क्यों है चुड़ैल, बोलती क्यों नहीं?'

'मैं क्यों इनकी जिन्दगी बिगाड़ूँगी दादा'—वह सहसा एकदम निचुड़ गयी, 'मैंने तो इन्हें कई बार मना किया.....।'

'कुलदीप' पाँड़े दहाड़े, 'सीधे रास्ते पर आ जाओ, अच्छा होगा। तुमने भैरो का प्यार देखा है क्रोध नहीं; जिन हाथों से मैंने पाल-पोसकर बड़ा किया है, उसी से तुम्हारा गला घोंटते मुझे देर न लगेगी।'

'दादा' कुलदीप हकलाया, 'हम दोनों....'

'पापी, नीच....' भैरो पाँड़े के हाथ की पाँचों अँगुलियाँ कुलदीप के चेहरे पर उभर आयीं, 'मैं सोचता था तू ठीक हो जायेगा' पाँड़े क्रोध से काँप रहे थे 'लेकिन नहीं, तू मेरी हत्या करने पर तुल ही गया है', वे फुलमत की ओर घूमकर चिल्लाये—'क्या खड़ी है डायन, भाग नहीं तो तेरा गला घोंटकर इसी पानी में फेंक दूँगा।'

अन्धड़ को पीते हुए तृषित साँप जैसा स्वर—यह सब मैंने किया था। पाँड़े चारपाई पर घायल साँप की तरह तड़फड़ाते हुए बुदबुदाये। उनकी छाती से सरककर रामायण की गुटका जमीन पर गिर पड़ी और उस पवित्र आराध्य वस्तु को उठाने का उन्हें ध्यान न रहा। कुलदीप दूसरे ही दिन लापता हो गया। पाँड़े अपनी बैसाखी के सहारे दिन भर गाँव-गिराँव की खाक छानते फिरे। तीन दिन

तीन रात बिना अन्न जल के वे पागल की तरह कुलदीप को ढूँढ़ते फिरे, किन्तु वह नहीं मिला। थक कर, हार कर पाँड़े वापस आ गये। बाप-दादों की इज्जत की प्रतीक इतनी लम्बी विशाल बखरी, जिसकी दीवालें मुँह दबाये शान्त, पुजारी के तप की तरह अडिग खड़ी थीं, किन्तु कितनी सुनसान, डरावनी, निष्प्राण पिंजर की तरह लगती थी यह बखरी। चौखट पर पैर रखते हुए पाँड़े की आत्मा कराह उठी—'चला गया!' बैसाखी रखकर पाँड़े आँगन के कोने में बैठ गये—अब वह कभी नहीं लौटेगा।

रात में उन्हें बड़ी देर तक नींद नहीं आयी। कुलदीप को बचपन से लेकर आज तक उन्होंने कभी अपनी आँख की ओट नहीं होने दिया। छुटपन से लेकर आज तक खिलाया-पिलाया, पाला-पोसा और आज लड़का दगा देकर निकल गया। पाँड़े अधरों की मेड़ के पीछे बिथा के सैलाब को रोकने का असफल प्रयत्न करते रहे।

(4)

भोर होने में देर थी, उनींदी आँखें करुआ रही थीं, किन्तु मन की जलन के आगे उस दर्द का क्या मोल। पाँड़े उठकर टहलने लगे। सामने का बँसवार के भीतर से पूरबी क्षितिज पर ललछौहाँ उजास फूटने लगा था। गली की मोड़ के कच्चे मकान के भीतर से जाँत की घर्र-घर्र गूँज रही थी। एक घुमड़ता गरगराहट का स्वर, जिसके पीछे जाँतवाली के कण्ठ की व्यथा की इस सुरीली तान टूट-टूटकर कौंध उठती थी–

मोहे जोगिनी बनाके कहाँ गइले रे जोगिया

पाँड़े एक क्षण अवाक् होकर इस दर्दीले गीत को सुनते रहे। पियासे, भूले-भटके, थके हुए स्वर, पाँड़े की आत्मा में जैसे समान वेदना को पहचान कर उतरते चले जा रहे हों।

'अब रोने चली है चुड़ैल' पाँड़े पागल की तरह बड़बड़ाते रहे—'रो-रोकर मर, मैं क्या करूँ।'

बाढ़ के लाल पानी में सूरज डूब रहा था, पाँड़े बैसाखी के सहारे आकर दरवाजे पर खड़े हुए, नदी की ओर आदमियों की भीड़ खड़ी थी। वे धीरे-धीरे उधर ही बढ़े। सामने तीन-चार लड़के अरहर की खूँटियाँ गाड़कर पानी का बढ़ाव नाप रहे थे।

'क्या कर रहा है रे छबीला' पाँड़े बलात् चेहरे पर मुस्कराहट का भाव लाकर बोले।

'देखता नहीं लँगड़ा, बाढ़ रोक रहे हैं।'

पाँड़े मुस्कराये—जैसा बाप वैसा बेटा। तेरा बाप भी खूँटियाँ गाड़ कर कर्मनाशा की बाढ़ रोकना चाहता है।

'वह भीड़ कैसी है रे छबीले?'

'नहीं जानते, फुलमत को नदी में फेंक रहे हैं, उसके बच्चे को भी, उसने पाप किया है', छबीला फिर गम्भीर खड़े पाँड़े से सटकर बोला, 'क्यों पाँड़े चाचा, जान लेकर बाढ़ उतर जाती है न।'

'हाँ, हाँ' पाँड़े आगे बढ़े। बोतल की टीप खुल गयी थी। पाँड़े के मन में भयानक प्रेत खड़ा हो गया। 'चलो, न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। हुँ, चली थी पाँड़े के वंश में कालिख पोतने। अच्छा ही हुआ कि वह छोकरा भी आज नहीं है....।'

फुलमत अपने बच्चे को छाती से चिपकाये टूटते हुए अरार पर एक नीम के तने से सटकर खड़ी थी। उसकी बूढ़ी माँ जार-बेजार रो रही थी, किन्तु आज जैसे मनुष्य ने पसीजना छोड़ दिया था, अपने-अपने प्राणों का मोह इन्हें पशु से भी नीचे उतार चुका था, कोई इस अन्याय के विरुद्ध बोलने की हिम्मत नहीं करता था। कर्मनाशा को प्राणों की बलि चाहिए, बिना प्राणों की बलि लिये बाढ़ नहीं उतरेगी.....फिर उसी की बलि क्यों न दी जाय, जिसने पाप किया.....परसाल जान के बदले जान दी गयी, पर कर्मनाशा दो बलि लेकर ही मानी.....त्रिशंकु के पास की लहरें किनारों पर साँप की तरह फुफकार रही थीं। आज मुखिया का विरोध करने का किसी में साहस न था। उसके नीचता के कार्यों का ऐसा समर्थन कभी न हुआ था। 'पता नहीं किस बैर का बदला ले रहा है बेचारी से।' भीड़ में कई इस तरह सोचते, ऐसा तो कभी नहीं हुआ था, किन्तु कौन बोले, सब मुँह सिये खड़े थे...।

'तुम्हारी क्या राय है भैरो पाँड़े' मुखिया बोला, 'सारे गाँव ने फैसला कर दिया—एक के पाप के लिए सारे गाँव को मौत के मुँह में नहीं झोंक सकते। जिसने पाप किया है उसका दण्ड भी वही भोगे....।'

एक वीभत्स सन्नाटा। पाँड़े ने आकाश की ओर देखा, आगे बढ़े, फुलमत भय से चिल्ला उठी। पाँड़े ने बच्चे को उसकी गोद से छीन लिया, 'मेरी राय पूछते हो मुखिया जी? तो सुनो, कर्मनाशा की बाढ़ दुधमुँहे बच्चे और एक अबला की बलि देने से नहीं रुकेगी, उसके लिए तुम्हें पसीना बहाकर बाँधों को ठीक करना होगा....कुलदीप कायर हो सकता है, वह अपने बहू-बच्चे को छोड़कर भाग सकता है, किन्तु मैं कायर नहीं हूँ; मेरे जीते जी बच्चे और उसकी माँ का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता....समझे।'

'तो यह बूढ़े पाँड़े जी की बहू' मुखिया व्यंग्य से बोला, 'पाप का फल तो भोगना ही होगा पाँड़े जी, समाज का दण्ड तो झेलना ही होगा।'

'जरूर भोगना होगा मुखिया जी....मैं आपके समाज को कर्मनाशा से कम नहीं समझता। किन्तु मैं एक-एक के पाप गिनाने लगूँ, तो यहाँ खड़े सारे लोगों को परिवार समेत कर्मनाशा के पेट में जाना पड़ेगा.....है कोई तैयार जाने को....?'

लोग अवाक् पाँड़े की ओर देख रहे थे, जो अपने कंधे से छोटे बच्चे को चिपकाये अपनी बैसाखी के सहारे खड़े थे, पत्थर की विशाल मूर्ति की तरह उन्नत, प्रशस्त, अटल, कर्मनाशा के लाल पानी में सूरज डूब रहा था।

जिन उद्धत लहरों की चपेट से बड़े-बड़े विशाल पीपल के पेड़ धराशायी हो गये थे, वे एक टूटे नीम के पेड़ से टकरा रही थीं, सूखी जड़ें जैसे सख्त चट्टान की तरह अडिग थीं, लहरें टूट-टूटकर पछाड़ खाकर गिर रही थीं। शिथिल....थकीं...पराजित...।

अभ्यास प्रश्न

1. 'कर्मनाशा की हार' कहानी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
2. 'कर्मनाशा की हार' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
3. कहानी-कला की दृष्टि से 'कर्मनाशा की हार' कहानी की समीक्षा कीजिए। **[2017 MF]**
4. 'कर्मनाशा की हार' कहानी के नायक के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

अथवा 'कर्मनाशा की हार' के मुख्य पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।
[2016 SA, 17 MA, MC, MD, 18 AA, 19 CN, CP, 20 ZE]

अथवा 'कर्मनाशा की हार' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्रांकन कीजिए।

5. कथानक की दृष्टि से 'कर्मनाशा की हार' कहानी पर प्रकाश डालिए।
6. प्रस्तुत कहानी का मुख्य पात्र आप किसे मानते हैं? सतर्क उत्तर लिखिए।
7. ''कर्मनाशा की हार' के बहाने लेखक का उद्देश्य सामाजिक रूढ़ियों की भर्त्सना करना है''—इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिए।
8. भैरो पाँड़े के मनोभाव में अचानक परिवर्तन के वास्तविक कारण पर प्रकाश डालिए।
9. ''कर्मनाशा की भयावह बाढ़ को शान्त करने की योजना के पीछे गाँववालों का न केवल अंधविश्वास वरन् उनकी ढकोसलापूर्ण नीति भी काम कर रही थी''—आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं?
10. शिवप्रसाद सिंह की भाषा-शैली की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
11. 'कर्मनाशा की हार' एक सफल कहानी है—इस कथन की पुष्टि कीजिए।
12. कहानी के प्रमुख तत्त्वों के आधार पर 'कर्मनाशा की हार' कहानी की विशेषताएँ लिखिए।
13. 'कर्मनाशा की हार' कहानी की कथावस्तु अपने शब्दों में लिखिए। **[2016 SF]**

अथवा 'कर्मनाशा की हार' कहानी की कथावस्तु प्रस्तुत कीजिए।

14. 'कर्मनाशा की हार' कहानी की कथावस्तु व शीर्षक की समीक्षा कीजिए।
15. 'कर्मनाशा की हार' कहानी की विषय-वस्तु संक्षेप में लिखिए।
16. कहानी तत्त्वों के आधार पर 'कर्मनाशा की हार' कहानी की समीक्षा कीजिए।
17. 'कर्मनाशा की हार' कहानी के मुख्य पात्र के चरित्र की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
18. कहानी तत्त्वों के आधार पर 'कर्मनाशा की हार' कहानी का वर्णन कीजिए। **[2019 CO]**
19. 'कथानक' के आधार पर 'कर्मनाशा की हार' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए। **[2019 CQ]**
20. 'कर्मनाशा की हार' कहानी के तथ्यों का उल्लेख कीजिए। **[2019 CR, 20 ZB**
21. 'कर्मनाशा की हार' कहानी की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। **[2020 ZG]**

6 जैनेन्द्र कुमार

व्यक्तित्व

जैनेन्द्र का जन्म 1905 ई0 में अलीगढ़ (कौड़ियागंज) में हुआ था। बाल्यावस्था का नाम आनन्दीलाल था। हस्तिनापुर में स्थापित एक गुरुकुल में आपकी प्रारम्भिक शिक्षा के लिए व्यवस्था की गयी तथा उसी संस्था में आपका वर्तमान नामकरण भी हुआ। पंजाब से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर आपने उच्च शिक्षा के लिए हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में प्रवेश लिया। किन्तु, कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन में सक्रिय सहयोग देने की प्रेरणा से पढ़ाई छोड़ कर दिल्ली चले गये। दिल्ली में आपने लगभग दो वर्ष तक व्यापार का भी काम किया। कुछ क्रान्तिकारी राजनीतिक पत्रों के संवाददाता के रूप में भी कार्य किया। जीवन की विषम परिस्थितियों में भी आपका लेखन-कार्य शिथिल नहीं हुआ। इसी बीच आपके प्रथम उपन्यास 'परख' को अकादमी पुरस्कार मिला। राजनीतिक आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेने के कारण आपको कई बार जेल जाना पड़ा। लेकिन अपनी साहित्य-साधना में कभी अवरोध नहीं आने दिया। 24 दिसम्बर, सन् 1988 ई0 में आपका निधन दिल्ली में हुआ।

कृतित्व

आपके कहानी संग्रह हैं—'**फाँसी**', '**वातायन**', '**नीलम देश की राजकन्या**', '**एक रात**', '**दो चिड़ियाँ**', '**पाजेब**' तथा '**जयसन्धि**'। आपकी सम्पूर्ण कहानियाँ '**जैनेन्द्र की कहानियाँ**' शीर्षक से सात भागों में प्रकाशित हुई हैं।

आपने '**परख**', '**तपोभूमि**', '**सुनीता**', '**त्यागपत्र**', '**कल्याणी**', '**सुखदा**', '**विवर्त**', '**व्यतीत**' और '**जयवर्धन**' उपन्यास भी लिखे हैं जो साहित्य-जगत् में बहुचर्चित तथा लोकप्रिय हुए हैं। आपने अनुवाद और सम्पादन का काम भी किया है। आपके अनेक निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

कथा-शिल्प एवं भाषा-शैली

जैनेन्द्र की कहानी-कला चरित्र की निष्ठा तथा संवेदना के व्यापक धरातल पर विकसित हुई है। आपकी कहानियों में दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण विशेष रूप से उभरा हुआ है। दार्शनिक आधार पर लिखी हुई आपकी कहानियों में आपके गम्भीर चिन्तन एवं बौद्धिक सघनता का समावेश हुआ है। आपकी कहानियों के कथानक मुख्य रूप से संवेदना पर आधारित हैं तथा पाठक के अन्तस्तल को स्पर्श करते हुए गतिशील हुए हैं। आपकी कहानियाँ मनोविश्लेषणात्मक तथा जीवन-दर्शन-परक भी हैं। फलतः उनमें विस्तार की अपेक्षा गहनता अधिक है। आपकी प्रमुख कहानियाँ हैं—'**जाह्नवी**', '**पाजेब**', '**एक रात**', '**मास्टरजी**' आदि। आपके अधिकतर कथानक स्पष्ट तथा सूक्ष्म हैं। उनमें व्यक्ति को केन्द्र में रखकर समाज के जीवन का चित्रण किया गया है। आपने कथा-वस्तु के विकास में सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा तथा मानवीय आदर्शों की स्थापना को महत्त्व दिया है।

आपने चरित्र-चित्रण पर विशेष बल दिया है तथा विविध प्रकार के चरित्रों की सृष्टि की है। मनोविश्लेषण के माध्यम से पात्रों के आन्तरिक द्वन्द्वों तथा मानसिक उलझनों को व्यक्त किया गया है। आपके पात्र मुख्यतः अन्तर्मुखी हैं। आप विशिष्ट पात्रों को विशिष्ट व्यक्तित्व देने में सफल रहे हैं। दूसरे प्रकार के पात्र वर्ग-प्रतिनिधि हैं जो प्रायः सामान्य कोटि में आते हैं।

जैनेन्द्र की शैली के विविध रूप हैं, जिनमें दृष्टान्त, वार्त्ता तथा कथा-शैलियाँ मुख्य हैं। नाटकीय एवं स्वगत-भाषण शैलियों का प्रयोग भी अनेक कहानियों में हुआ है। संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी के शब्दों को समेटे आपकी भाषा भावपूर्ण, चित्रात्मक एवं सशक्त है। यथोचित शब्द-रचना तथा भावानुकूल शब्द-चयन आपकी भाषा-शैली की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। जैनेन्द्र की कहानियों में संवादों की सीमित योजना हुई है, तथापि उनके कथोपकथन मानव-चरित्र का विश्लेषण करते हुए, पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं एवं उनकी मानसिक स्थितियों को उजागर करते हैं। आपकी कहानियों में निश्चित लक्ष्य है तथा उनमें चिन्तन की गहराई के अतिरिक्त अनुभूति की व्यंजना एवं आदर्श की प्रतिष्ठा का प्रयत्न भी हुआ है। आपने व्यक्ति के जीवन के आन्तरिक पक्षों, उसके रहस्यों एवं उसकी उत्कृष्टताओं को दार्शनिक दृष्टिकोण से उभारने का प्रयत्न किया है।

ध्रुव-यात्रा

(1)

राजा रिपुदमन बहादुर उत्तरी ध्रुव को जीतकर योरुप के नगर-नगर से बधाइयाँ लेते हुए हिन्दुस्तान आ रहे हैं। यह खबर अखबारों ने पहले सफे या मोटे अक्षरों में छापी।

उर्मिला ने खबर पढ़ी और पास पालने में सोते शिशु का चुम्बन किया।

अगले दिन पत्रों ने बताया कि योरुप के तट एथेन्स से हवाई जहाज पर भारत के लिए रवाना होते समय उन्होंने योरुप के लिए सन्देश माँगने पर कहा कि उसे 'अद्‌भुत' की पूजा की आदत छोड़नी चाहिए।

उर्मिला ने यह भी पढ़ा।

अब वह बम्बई आ पहुँचे हैं, जहाँ स्वागत की जोर-शोर की तैयारियाँ हैं। लेकिन उन्हें दिल्ली आना है। नागरिक आग्रह कर रहे हैं और शिष्ट-मण्डल मिल रहा है। उसकी प्रार्थना सफल हुई तो वह दिल्ली के लिए रवाना हो सकेंगे। अखबार के विशेष प्रतिनिधि का अनुमान है कि उनको झुकाना कठिन होगा। वह यद्यपि सबसे सौजन्य से मिलते हैं, पर यह भी स्पष्ट है कि उनको अपने सम्बन्ध के प्रदर्शनों में उल्लास नहीं है। संवाददाता ने लिखा है, "मैं मिला तब उनका चेहरा ऐसा था कि वह यहाँ न हों, जाने कहीं दूर हों।"

उर्मिला ने पढ़ा और पढ़कर अखबार अलग रख दिया।

सचमुच राजा रिपुदमन बम्बई नहीं ठहर सके। छपते-छपते की सूचना है कि आज सबेरे के झुटपुटे में उनका जहाज निर्विघ्न दिल्ली पहुँच गया है।

एक दिन, दो दिन, तीन दिन। उर्मिला रोज अखबार पढ़ती है। इन दिनों वह कहीं बाहर नहीं गयी। राजा रिपु को लोग अवकाश नहीं दे रहे हैं। सुना जाता है कि वह दिल्ली छोड़ेंगे। कहाँ जायेंगे, इसके कई अनुमान हैं। निश्चय यह है कि जायेंगे किसी कठिन यात्रा पर।

उर्मिला ने सदा की भाँति यह भी पढ़ लिया।

चौथे दिन एक बड़ा मोटा लिफाफा उसे मिला। अन्दर खत संक्षिप्त था। पढ़ा और उसी तरह मोड़कर लिफाफे में रख दिया। फिर बच्चे की ओर ध्यान दिया। वह जागने को तैयार न था। फिर भी उठाकर उसे कन्धे से लगाया और कमरे में डोलने लगीं।

(2)

इधर राजा रिपुदमन को अपने से शिकायत है। उन्हें नींद कम आती है। मन पर पूरा काबू नहीं मालूम होता। सामने की चीज पर एकाग्र होने में कठिनाई होती है। नहीं चाहते, वहाँ ख्याल जाते हैं। कभी तो अपनी ही कल्पनाओं से उन्हें डर लगने लगता है। अभी योरुप से आते हुए, ऊपर आसमान की तरह नीचे भी गहन और अपार नीलिमा को देखकर उन्हें होता था कि क्यों इस जहाज से मैं इस नगर में कूद नहीं पड़ूँ। सारांश इसी तरह की अस्त-व्यस्त बातें उनके मन में उठ आया करती हैं और वह अपने से असन्तुष्ट हैं।

योरुप में ही उन्होंने मानसोपचार के सम्बन्ध में आचार्य मारुति की ख्याति सुनी थी। भारत में और तिस पर दिल्ली में रखकर जिन मारुति को नहीं जानते थे, उन्हीं के विषय में योरुप के देशों से वह बड़ी श्रद्धा लेकर लौटे हैं। इसलिए अवकाश पाते ही वह उनकी शरण में पहुँचे। यद्यपि सन् 1960 की बात है कि जिस वर्ष आचार्य का देहान्त हुआ, पर उस समय वह जीवित थे।

अभिवादनपूर्वक आचार्य ने कहा, "वैद्य के पास रोगी आते हैं। विजेता मेरे पास किस सौभाग्य से आये हैं?"

रिपु, "रोगी ही आपके पास आया है। विजेता छल है और उस दुनिया के छल को दुनिया के लिए छोड़िये। पर आप तो जानते हैं।"

आचार्य, "हाँ चेहरे पर आपके विजय नहीं पराजय देखता हूँ। शिकायत क्या है?"

रिपु, "मैं खुद नहीं जानता। मुझे नींद नहीं आती। और मन पर मेरा काबू नहीं रहता।"

"हूँ, क्या होता है?"

"जो नहीं चाहता, मन के अन्दर वह सब कुछ हुआ करता है।"

"खासतौर पर आप क्या नहीं चाहते?"

"क्या कहूँ? यही देखिये के हिन्दुस्तान लौट आया हूँ, जबकि ध्रुव पर अभी बहुत काम बाकी है। विजेता शब्द व्यंग्य है, ध्रुव देश भी हम सबके लिए उद्यान होना चाहिए। एक अकेला झण्डा गाड़ आने से क्या होता है? यह सब काम काफी है। फिर भी मैं हिन्दुस्तान आ गया। भला क्यों?"

मारुति गौर से रिपुदमन को देखते रहे। बोले, "तो हिन्दुस्तान न आना जरूरी था।"

"हाँ, आना किसी भी तरह जरूरी न था।"

"क्यों? हिन्दुस्तान तो घर है।"

"पर क्या मेरा? मेरा घर तो ध्रुव भी हो सकता है।"

आचार्य ने ध्यानपूर्वक रिपुदमन को देखते हुए कुछ हँसकर कहा, "यानी हिन्दुस्तान को छोड़कर कोई घर हो सकता है।"

राजा रिपुदमन ने उत्साह से कहा, "लेकिन क्यों कोई घर हो? और मेरे जैसे आदमी के लिए!"

आचार्य, "खैर, अब हम काम की बातें करें। अभी मैं कुछ नहीं कह सकता। कल पहली बैठक दीजिये, तीन बजकर बीस मिनट पर। डायरी रखते हैं? नहीं, तो अब से कल तक की डायरी रखिये। साथ जो खर्च करें उसका पायी-पायी हिसाब और जिनसे मिलें उनका ब्योरा भी लिखियेगा।"

"वह सब अभी न कह सकूँगा। मैं सोचता हूँ, कोई खराबी नहीं है। मैं वैज्ञानिक से अधिक विश्वासी हूँ। विश्वास में बहुत शक्ति है। अब हम कल मिलेंगे।... जी नहीं, इसके लिए बाहर सेक्रेटरी है।"

बड़े-बड़े नोटों को वापस पर्स में रखते हुए राजा ने कहा, "मेरा स्वास्थ्य आप मुझे दे दें तो मैं बड़ा ऋणी होऊँगा।"

आचार्य हँसकर बोले, "लेकिन आप तो स्वस्थ ही हैं। मैं आत्मा को मानता और शरीर को जानता हूँ। शरीर आत्मा का यन्त्र है। यन्त्र आपका साबित है, निरोग है—सब अवयव ठीक है। कृपया कल सबेरे आप यहाँ के यन्त्र-मन्दिर में भी हो आयें। सेक्रेटरी सब बता देंगे। वहाँ आपके हृदय, मस्तिष्क और शेष शरीर का पूरा निरीक्षण हो जायगा और परिणाम दोपहर तक मैं देख चुकूँगा। यह सब शास्त्रीय सावधानी है और उपयोगी भी है। लेकिन आप मान लें कि आपका शरीर एकदम तन्दुरुस्त है।... कल डायरी लाइयेगा।"

अगले दिन रिपुदमन समय पर पहुँचे। आचार्य ने तरह-तरह के नक्शे और चित्र उनके आगे रखे और कहा, "देखिये, आपके यन्त्र का पूरा खुलासा मौजूद है। मस्तक और हृदय-सम्बन्धी परिणाम सही नहीं उतरे हैं तो विकार उन अवयवों में मत मानिये। व्यतिरेक यों है भी सूक्ष्म... डायरी है?"

रिपुदमन ने क्षमा माँगी। कहा, "मैं चित्त को उस जितना भी तो एकाग्र न कर सका।"

आचार्य हँसे। बोले, "कोई बात नहीं; अगली बार सही, यह कहिए कि अपने भाई महाराज-साहब और रानी-माता से मिलने आप जाइयेगा। विजेता को जीतने के लिए मारके बहुत हैं, पर अपनों का मन जीतना भी छोटी बात नहीं है। मैंने कल फोन पर महाराज से बातें की थीं। आप जो करो वह उसमें खुशी हैं। लेकिन अपने सुख से आप इतने विमुख न रहो—यह भी वह चाहते हैं। अच्छे-से-अच्छे सम्बन्ध मिल सकते हैं या आप चुन लो। विवाह अनिष्ट वस्तु नहीं है। वह तो एक आश्रम का द्वार है। क्यों, यह चर्चा अरुचिकर है?"

रिपुदमन ने कहा, "जी, मैं उसके अयोग्य हूँ। विवाह से व्यक्ति रुकता है। वह बँधता है। वह तब सबका नहीं हो सकता। अपना एक कोल्हू बनाकर उसमें जुता हुआ चक्कर में ही घूम सकता है। नहीं, उस बारे में मुझे कुछ कहने को नहीं है।"

आचार्य हँसकर बोले, "विवाह चक्कर सही। लेकिन प्रेम?"

रिपुदमन ने कुछ जवाब नहीं दिया।

"प्रेम से तो नाराज नहीं हो? विवाह का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। प्रेम के निमित्त से उसकी सृष्टि है। इससे विवाह की बात तो दूकानदारी की है। सच्चाई की बात प्रेम है। इस बारे में तुम अपने से बात करके देखो। वह बात डायरी में दर्ज कीजियेगा। अब परसों मिलेंगे।"

"परसों यदि न गया।"

"कहाँ न गये?"

"यही हिमालय या कहीं।"

"जहाँ चाहे जाओ। लेकिन मेरा दो बैठकों का कर्ज अभी बाकी है। परसों वहीं तीन-बीस पर आप आओगे। अब घड़ी हमें समय देना नहीं चाहती।"

"परसों के विषय में मैं आशावान से अधिक नहीं हूँ।"

"अच्छा तो कल उनसे मिलकर आशा को विश्वास बना लीजिए, जिनसे न मिलने के लिए मुझसे मिला जाता है। फोन पर मिलिये, वह न हो और दूरी हो तो हवाई यात्रा कीजिए। पर खटका छोड़कर उनसे मिलिये—अवश्य और कल! रेग्युलेटर जहाँ है उसके विपरीत मेरी सलाह जाकर बेकार ही हो सकती है।"

रिपुदमन ने चमककर कहा, "किसकी बात आप करते हैं।"

"नहीं जानता वह कौन है! और जानूँगा तो आप ही से जानूँगा।... देखिये, ध्रुव से और हिमालय से लड़ाई भी ठीक-ठीक तभी आपकी चलेगी, जब अपनी लड़ाई एक हद तक सुलझ चुकेगी। प्रेम का इनकार अपने से इनकार है।... लेकिन घड़ी की आज्ञा का उल्लंघन हम अधिक नहीं करेंगे।"

"देखिये, परसों यदि आ सका।"

"आ जायेंगे... नमस्कार।"

"नमस्कार।"

(3)

समय सब पर बह जाता है और अखबार कल को पीछे छोड़ आज पर चलते हैं। राजा रिपु नयेपन से जल्दी छूट गये। ऐसे समय सिनेमा के एक बॉक्स में उर्मिला से उन्होंने भेंट की। उर्मिला बच्चे को साथ लायी थी। राजा सिनेमा के द्वार पर उसे मिले और बच्चे को गोद में लेना चाहा। उर्मिला ने जैसे यह नहीं देखा और अपने कन्धे से उसे लगाये वह उनके साथ जीने पर चढ़ती चली गयी। बॉक्स में आकर सफलतापूर्वक उन्होंने बिजली का पंखा खोल दिया। पूछा, "कुछ मँगाऊँ?"

"नहीं!"

घण्टी बजाकर आदमी को बुलाया। कहा, "दो क्रीम?"

उसके जाने पर कहा, "लाओ मुझे दो न, क्या नाम है!"

उर्मिला ने मुस्कराकर कहा, "नाम अब तुम दो।"

"तो लो, आदित्यप्रसन्नबहादुर, खूब है!"

"बड़े आदमी बड़ा नाम चाहते हैं। मैं तो मधु कहती हूँ।"

"तो वह भी ठीक है, माधवेन्द्रबहादुर, खूब है।"

"तुम जानो। मुझे तो मधु काफी है।"

इस तरह कुल बातें हुईं और बीच ही में जरूरत हुई कि दोनों खेल से उठ जायँ और कहीं जाकर आपस की सफाई कर लें।

दूर जमुना किनारे पहुँचकर राजा ने कहा, "अब कहो, मुझे क्या कहती हो?"

"कहती हूँ कि तुम क्यों अपना काम बीच में छोड़कर आये?"

"मेरा काम क्या है?"

"मेरी और मेरे बच्चे की चिन्ता जरूर तुम्हारा काम नहीं है। मैंने कितनी बार तुमसे कहा, तुम उससे ज्यादा के लिए हो?"

"उर्मिला, अब भी मुझसे नाराज हो?"

"नहीं, तुम पर गर्वित हूँ।"

"मैंने तुम्हारा घर छुड़ाया। सब में रुसवा किया। इज्जत ली। तुमको अकेला छोड़ दिया। उर्मिला, मुझे जो कहो थोड़ा। पर अब बताओ, मुझे क्या करने को कहती हो? मैं तुम्हारा हूँ। रियासत का हूँ, न ध्रुव का हूँ। मैं बस, तुम्हारा हूँ। अब कहो।"

"देखो राजा तुम भूलते हो। गिरिस्ती की-सी बात न करो। महाप्राणों की मर्यादा और है। तुम उन्हीं में हो। मेरे लिए क्या यही गौरव कम है कि मैं तुम्हारे पुत्र की माँ हूँ। मुझे दूसरी सब बातों से क्या मतलब है? लेकिन तुम्हें हक नहीं कि मुझसे घिरो। दुनिया को भी जताने की जरूरत नहीं कि मेरा बालक तुम्हारा है। मेरा जानना मेरे गर्व को काफी है। मेरा अभिमान इसमें तीसरे को शरीक न करेगा। लेकिन मैं अपने को क्षमा नहीं कर सकूँगी, अगर जानूँगी कि मैं तुम्हारी गति में बाधा हूँ। अपने भीतर के वेग को

शिथिल न करो, तीर की नाईं बढ़े चलो कि जब तक लक्ष्य पार हो। याद रखना कि पीछे एक है जो इसी के लिए जीती है।''

''उर्मिला, तुमने मुझे ध्रुव भेजा। कहती थी—उसके बाद मुझे दक्षिणी ध्रुव जीतने जाना होगा। क्या सच मुझे वहीं जाना होगा?''

''राजा, कैसी बात करते हो! तुम कहीं रुक कैसे सकते हो? जाना होगा, नहीं जाओगे? अतुल वेग तुममें है, क्या वह यों ही? नहीं, मैं देखूँगी कि कुछ उसके सामने नहीं टिक सकता। मैं तुम्हारी बनी, तो क्या इतना नहीं कर सकती? इस पुत्र को देखो। भवितव्य के प्रति यह तुम्हारा दान है। अब तुम उऋण हो, गति के लिए मुक्त हो। ध्रुव धरती के हो चुकेंगे, जबकि आकाश के सामने होंगे। राजा तुमको रुकना नहीं है। पथ अनन्त हो, यही गति का आनन्द है।''

''उर्मिला, मैं आचार्य मारुति के यहाँ गया था—''

''मारुति! वह ढोंगी?''

''वह श्रद्धेय है, उर्मिला।''

''जानती हूँ, वह स्त्री को चूल्हे के और आदमी को हल के लिए पैदा हुआ समझता है। वह महत्त्व का शत्रु और साधारणता का अनुचर है। उसने क्या कहा?''

''तुम उन्हें जानती हो?''

''माँ उनकी भक्त थी। वह अक्सर हमारे यहाँ आते थे। उन्हीं की सीख से माँ ने मुझे संस्कृत पढ़ायी और नयी हवा से बचाया। तभी से जानती हूँ। वह तेजस्विता का अपहर्ता है। अब वहाँ न जाना। उसने कहा क्या था?''

''कहा था, यह गति अगति है। जगह बदलना नहीं, सचेत होना गतिशीलता का लक्षण है। उसकी शायद राय है कि मुझे घूमना नहीं, विवाह करना चाहिए।''

''मैं जानती थी। और तुम्हारी क्या राय है?''

''वही जानने तुम्हारे पास आया हूँ। मारुति सब जानते हैं, मुझको तुम भी जानती हो। इसलिए तुम ही कहो, मुझको क्या करना है?''

'''विवाह नहीं करना है।''

''उर्मिला!''

''तुम्हारा शरीर स्वस्थ है और रक्त उष्ण है तो...''

''उर्मिला!''

''तो स्त्रियों की कहीं कमी नहीं है।''

''बको मत, उर्मिला, तुम मुझे जानती हो।''

''जानती हूँ, इसी से कहती हूँ। तुम्हारे लिए क्या मैं स्त्री हूँ? नहीं, प्रेमिका हूँ। मैं इस बारे में कभी भूल नहीं करूँगी। इसीलिए किसी स्त्री के प्रति तुममें मैं निषेध नहीं चाह सकती। मुझमें तुम्हारे लिए प्रेम है, इससे सिद्धि के अन्त तक तुम्हें पहुँचाये बिना मैं कैसे रह सकती हूँ।''

''उर्मिला, सिद्धि मृत्यु से पहले कहाँ है।''

''वह मृत्यु के भी पार है, राजा! इससे मुझ तक लौटने की आशा लेकर तुम नहीं आओगे। सौभाग्य का क्षण मेरे लिए शाश्वत है। उसका पुनरावर्तन कैसा?''

''उर्मिला, तो मुझे जाना ही होगा? तुम्हारे प्रेम-दया नहीं जानेगा?''

''यह क्या कहते हो, राजा! मैं तुम्हें पाने के लिए भेजती हूँ, और तुम मुझे पाने के लिए जाते हो। यही तो मिलने की राह है। तुम भूलते क्यों हो?''

''उर्मिला, आचार्य मारुति ने कहा था—साधारण रहो, सरल रहो। हम दोनों कहीं अपने साथ छल तो नहीं कर रहे हैं?''

''नहीं राजा, मारुति नहीं जानता। वह समझ की बात समझ से जो परे है, उस तक प्रेम ही पहुँच सकता है। जाओ राजा, जाओ। मुझको परिपूर्ण करो, स्वयं भी सम्पूर्ण होओ।''

''देखो उर्मिला, तुम भी रो रही हो।''

''हाँ, स्त्री रो रही है, प्रेमिका प्रसन्न है। स्त्री की मत सुनना, मैं भी पुरुष की नहीं सुनूँगी। दोनों जने प्रेम की सुनेंगे। प्रेम जो अपने सिवा किसी दया को, किसी कुछ को नहीं जानता।''

(4)

पौने चार बजे राजा रिपु आचार्य के यहाँ पहुँचे। डायरी दी। आचार्य ने उसे गौर से देखा। अनन्तर नोटबुक अलग रखी। कुछ देर विचार में डूबे रहे। अनन्तर सहसा उबरकर बोले, "क्षमा कीजियेगा। मैं कुछ याद करता रह गया। आपने डायरी में संक्षिप्त लिखा। उर्मिला माता है और कुमारी है—यही न?"

"जी।"

"तुम्हारे पुत्र की अवस्था क्या है?"

"वर्ष से कुछ अधिक है।"

"उत्तरी ध्रुव जाने में उर्मिला की सम्मति थी?"

"प्रेरणा थी।"

"यह विचार उसने कहाँ से पाया?"

"शायद मुझसे ही।"

"आरम्भ से तुम विवाह को उद्यत थे, वह नहीं?"

"जी नहीं। मैं बचता था, वह उद्यत थी।"

"हुँह! बचते थे, अपनी स्थिति और माता-पिता के कारण?"

"कुछ अपने स्वप्नों के कारण भी।"

"हुँह... फिर?"

"गर्भ के बाद मैं तैयार हुआ कि हम साथ रहें।"

"विवाहपूर्वक?"

"जी, वह चाहे तो विवाहपूर्वक भी।"

"हूँह,... फिर?"

"तब उसका आग्रह हुआ कि मुझे ध्रुव के लिए जाना होगा।"

"तो उस आग्रह की रक्षा में आप गये?"

"पूरी तरह नहीं। मन से मैं भी साथ रहने का बहुत इच्छुक न था। इससे निकल जाना चाहता था।"

"तुम्हारे आने से तो वह प्रसन्न हुई।"

"शायद हुई। लेकिन रुकने से अप्रसन्न है।"

"क्या कहती है?"

"कहती है कि जाओ। जय-यात्रा की कहीं समाप्ति नहीं। सिद्धि तक जाओ जो मृत्यु के पार है।"

अकस्मात् आवेश में आकर आचार्य बोले, "कौन, उर्मिला? वही धनञ्जयी की लड़की? वह यह कहती है?

"जी!"

"वह पागल है।"

"यही वह आपके बारे में कहती है।"

आचार्य जोर से बोले, "चुप रहो, तुम जानते नहीं। वह मेरी बेटी है।"

"बेटी!"

"मैं बुड्ढा हूँ। रिपु, तुम समझदार हो। हाँ, सगी बेटी।"

"आचार्य जी, यह आप क्या कह रहे हैं? तो आप सब जानते थे।"

"सब नहीं तो बहुत-कुछ जानता ही था। देखो रिपुदमन, अब बताओ तुम क्या कहते हो?"

"मैं कुछ नहीं जानता, कुछ नहीं कहता। मेरे लिए सब उर्मि से पूछिये।"

"सुनो रिपुदमन, तुम अच्छे लड़के हो। उर्मि मुझसे बाहर न होगी। पुत्र की व्यवस्था हो जायेगी और तुम लोग विवाह करके यहीं रहोगे।"

रिपुदमन ने हाथों से मुँह ढँककर कहा, "मैं कुछ नहीं जानता। उर्मि कहे, वही मेरी होनहार है।"

"उर्मि तो मेरी ही बेटी है। रिपुदमन, निराश न हो।"

(5)

आचार्य के समक्ष पहुँचकर उर्मिला ने कहा, "आपने मुझे बुलाया था?"

"हाँ बेटी, रिपुदमन ने सब कहा है। जो हुआ, हुआ। अब तुम्हें विवाह कर लेना चाहिए।"

"अब से मतलब कि पहले नहीं करना चाहिए था?"

"विवाह हुआ है तब तो खुशी की बात है, फिर वह प्रकट क्यों न हो? तुम दोनों साथ रहो।"

"भगवान् पर तो सब प्रकट है। और साथ बहुतेरे लोग रहते हैं।"

"तो तुम क्या चाहती हो?"

"वही जो राजा रिपुदमन उस अवस्था में चाहते थे, जब मुझे मिले थे। उनके स्वप्न मेरे कारण भग्न होने चाहिए कि पूर्ण? मेरी चिन्ता उन्हें उनके प्रकृत मार्ग से हटाये, यह मैं कैसे सह सकती हूँ?"

"स्वप्न तो सत्य नहीं है, बेटी! तब की मन की बहक को उसके लिए सदा क्यों अंकुश बनाये रखना चाहती हो? एक भूल के लिए किसी से इतना चिढ़ना न चाहिए।"

"आचार्यजी, आप किस अधिकार से मुझसे यह कह रहे हैं?"

"रिपु ने जो अपनी हैसियत और माता-पिता के ख्याल से आरम्भ में विवाह में झिझक की, इसी का न यह बदला है?"

"आचार्यजी, आप इन बातों को नहीं समझेंगे। शास्त्र में से स्त्री को आप नहीं जान लेंगे।"

"बेटी, फिर कोई किसमें किसको जानेगा, बता दो?"

"सब-कुछ प्रेम में से जाना जायगा जोकि मेरे लिये आपके पास नहीं है।"

"सच बेटी, मेरे पास वह नहीं है। और तेरे लिए जितना चाहूँ उतना है, यह मैं किसी तरह न कह सकूँगा। लेकिन तुमसे जो सच्चाई छिपाता रहा हूँ और अब छिपा रहा हूँ, वह अनर्थ अपने लिये नहीं, तेरे प्रेम के लिए ही मुझसे बन सका है, यह भी झूठ नहीं है। बेटी, मैं काफी जी लिया। अब मरने में देर लगाने की बिलकुल इच्छा नहीं है। ऐसे समय तेरे अहित की बात कह सकूँगा, ऐसा निष्ठुर मुझे न मानना। रिपुदमन को भरमा मत, उर्मिला! किसी का सपना होने के लिए वह नहीं है। तुम लोग विवाह करो और राज-मार्ग पर चल पड़ो।"

उर्मिला ने हँसकर कहा, "आप थक गये हैं, आचार्यजी भीड़ चलती रही है, इसी कारण जो प्रशस्त और स्वीकृत हो गया है, वहाँ आपका राज-मार्ग है न? पर मुक्ति का पथ अकेले का है। अकेले ही उस पर चला जायगा। वहाँ पाण्डव तक पाँच नहीं हैं। सब एक-एक हैं।"

"बेटी, यह क्या कहती है? सनातन ने जिसको प्रतिष्ठा दी है, बुद्धि के अहंकार में उसका तर्जन श्रेयस्कर नहीं होने वाला है। उर्मिला, यह एक बुड्ढे की बात रखो। पर बेटी, उसे छोड़ो। बताओ, मुझे माफ कर सकोगी?"

"आप रिपुदमन की, अपनी समझ से उससे हित की ओर मोड़ना चाहते हैं, उसके लिए आपको क्षमा माँगने की जरूरत है?"

"तो तुम रिपु से नाराज ही रहोगी? उसके साथ अपने को भी दण्ड ही देती रहोगी?"

"मुझे पाने के लिए उन्हें जाना होगा, उन्हें पाने के लिए मुझे भेजना होगा—यह आपको कैसे समझाऊँ?"

"हाँ, मैं नहीं समझ सकूँगा। लेकिन मेरा हक और दावा है। सोचता था, भगवान् के आगे पहुँचूँगा, उससे पहले उस बात को कहने का मौका नहीं... ! क्यों तू अपने पिता की भी बात नहीं मानेगी?"

"पिता को जीते-जी इस सम्बन्ध में, मैं कब सन्तोष दे सकी?"

"बेटी, अब भी नहीं दे सकोगी?"

"उर्मिला ने चौंककर कहा, "क्यों आचार्यजी?"

मारुति का कण्ठ भर आया। काँपते हुए बोले, "हाँ बेटी! चाहे तो अब तू अपने बाप को सन्तोष और क्षमा दोनों दे सकती है।"

उर्मि स्तब्ध, आचार्य को देखती रही। उनकी आँखों से तार-तार आँसू बह रहे थे। उनकी दशा दयनीय थी। बोली, "मुझ अभागिन के भाग्य में आज्ञा-पालन तक का सुख, हाय, विधाता क्यों नहीं लिख सका? जाती हूँ, इस हतभागिन को भूल जाइयेगा।"

(6)

रिपुदमन ने कहा, "आचार्य से तुम मिली थीं?"

"मिली थी।"

"अब मुझे क्या करना है?"

"करना क्या है राजा, तुम्हें जाना है, मुझे भेजना है!"

"कहा जाना है—दक्षिणी ध्रुव!"

"हाँ, नहीं तो उत्तर के बाद कहीं तुम दक्षिण के लिए शेष न रहो।"

"दक्षिण के बाद फिर किसी के लिए शेष बचने की बात नहीं रह जायगी न?"

"दिशाओं के द्वार-दिगंत में हम खो जायँ। शेष यहाँ किसको रहना है?"

"छोड़ो, मैं तुम्हें नहीं समझता, तुम्हारी संस्कृत नहीं समझता। सीधे बताओ, मुझे कब जाना है?"

"जब हवाई जहाज मिल जाय।"

"तो लो, तुम्हारे सामने फोन से तय किये लेता हूँ।"

फोन पर भी बात करते समय टकटकी बाँधकर उर्मिला रिपु को देखती रही। अनन्तर पूछा, "तो परसों शटलैण्ड द्वीप के लिए पूरा जहाज हो गया?"

"हाँ, हो गया।"

"लेकिन परसों कैसे जाओगे, दल जुटाना नहीं है?"

"तुम्हारा मन रखूँगा! दल के लिए ठहरूँगा।"

"लेकिन उसके बिना क्या होगा? नहीं, परसों तुम नहीं जाओगे।"

"और न सताओ उर्मिला, जाऊँगा। अमरीका को फोन किये देता हूँ। दक्षिण से कुछेक साथी हो जायेंगे।"

"नहीं राजा, परसों नहीं जाओगे।"

"मैं स्त्री की बात नहीं सुनूँगा; मुझे प्रेमिका के मन्त्र का वरदान है।"

आँखों में आँसू लाकर उर्मिला ने रिपु के दोनों हाथ पकड़कर कहा, "परसो नहीं जाओगे तो कुछ हर्ज है? यह तो बहुत जल्दी है?"

रिपु हाथ झटककर खड़ा हो गया। बोला, "मेरे लिए रुकना नहीं है। परसों तक इसी प्रायश्चित में रहना है कि तब तक क्यों रुक रहा हूँ।"

उर्मिला के फैले हुए हाथ खाली रहे। और वह कहती ही रही, "राजा, ओ मेरे राजा!"

(7)

दुनिया के अखबारों में धूम मच गयी। लोगों की उत्कण्ठा का ठिकाना न था। योरुप, अमरीका, रूस आदि देशों के टेलीफोन जैसे इसी काम के हो गये। ध्रुव-यात्रा योजना की बारीकियाँ पाने के बारे में संवाददाताओं में होड़ मच उठी। रिपुदमन उन्हें कुछ न बता सका, यह उसकी दक्षता का प्रमाण बना। हवाई जहाज जो शटलैण्ड के लिए चार्टर हुआ था, उसकी विभिन्न कोणों से ली गयी असंख्य तस्वीरें छपीं।

उर्मिला अखबार लेती, पढ़ती और रख देती। अनन्तर शून्य में देखती रह जाती। नहीं तो बच्चे में डूबती।

एक दिन-दो दिन। वह कहीं बाहर नहीं गयी। टेलीफोन पास रख छोड़ा। पर कोई नहीं, कुछ नहीं अखबार के पन्नों से आगे और कोई बात उस तक नहीं आयी।

आज अन्तिम सन्ध्या है। राष्ट्रपति की ओर से दिया गया भोज हो रहा होगा। सब राष्ट्रदूत होंगे, सब नायक, सब दलपति। गई रात तक वह इन कल्पनाओं में रही।

तीसरा दिन। उर्मिला ने अखबार उठाया। सुर्खी है और बॉक्स में खबर है। राजा रिपुदमन सबेरे खून में मरे पाये गये। गोली का कनपटी के आर-पार निशान है।

खबर छोटी थी; जल्दी पढ़ ली गयी। लेकिन पूरे अखबार में विवरण और विस्तार के साथ दूसरी सूचनाएँ थीं। जिन्हें उर्मिला पढ़ती ही चली गयी, पढ़ती ही चली गयी। पिछली सन्ध्या को जगह-जगह राजा रिपुदमन के सम्मान में सभाएँ हुई थीं। उनकी चर्चा

थी। खासकर राष्ट्रपति के उस भोज का पूरा विवरण था, जिसे दुनिया का एक महत्त्वपूर्ण समारोह कहा गया था।

उर्मिला रस की एक बूँद नहीं छोड़ सकी। उसने अक्षर-अक्षर सब पढ़ा।

दोपहर बीत गयी, तब नौकरानी ने चेताया कि खाना तैयार है। इस समय उसने भी तत्परता से कहा, ''मैं भी तैयार हूँ। यहीं ले आओ। प्लेट्स इसी अखबार पर रख दो।''

उसी दिन अखबारों ने अपने खास अंक में मृत व्यक्ति का तकिये के नीचे से मिला जो पत्र छापा था, वह भी नीचे दिया जाता है।

''सब के प्रति—

बन्धुओ,

मैं दक्षिणी ध्रुव जा रहा था, सब तैयारियाँ थीं। ध्रुव में मुझे महत्त्व नहीं है। फिर भी मैं जाना चाहता था। कारण, इस बार मुझे वापस आना नहीं था। ध्रुव के एकान्त में मृत्यु सुखकर होती। ध्रुव-यात्रा मेरी व्यक्तिगत बात थी, उसे सार्वजनिक महत्त्व दिया गया, यह अन्याय है। इसी शाम राष्ट्रपति और राष्ट्रदूतों ने मुझे बधाइयाँ दीं, मेरे पराक्रम को सराहा। पर उन्हें छल हुआ है। मैं यह श्रेय नहीं ले सकता। यह चोरी होगी। उस भ्रम में लोगों को रखना मेरे लिए गुनाह है। क्या अच्छा होता कि ध्रुव मैं जा सकता, लेकिन लोगों ने सार्वजनिक रूप से जो श्रेय मुझ पर डाला, उसका स्वल्पांश भी किसी तरह अपने साथ लेकर मैं नहीं बढ़ सकता हूँ। यात्रा एकदम निजी कारणों से थी। मुझे बहुत खेद है कि मैं किसी से मिले आदेश और उसे दिये अपने वचन को पूरा नहीं कर पा रहा हूँ; लेकिन ध्रुव पर भी मुझे बचना था नहीं। इसलिए बचना अब नहीं है। मुझे सन्तोष है कि किसी की परिपूर्णता में काम आ रहा हूँ। मैं पूरे होश-हवाश में अपना काम तमाम कर रहा हूँ। भगवान् मेरे प्रिय के अर्थ मेरी आत्मा की रक्षा करे!''

अभ्यास प्रश्न

1. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहानी के शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।
2. संवाद की दृष्टि से 'ध्रुवयात्रा' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
3. चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'ध्रुवयात्रा' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
4. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की कथावस्तु का विवेचन कीजिए और कहानी का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
5. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के आधार पर उर्मिला का चरित्र-चित्रण कीजिए।
6. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की मूल संवेदना को उद्घाटित कीजिए।
7. जैनेन्द्र की संकलित कहानी का सारांश लिखिए।

अथवा 'ध्रुवयात्रा' कहानी का सारांश लिखिए। **[2020 ZI, ZK, ZL, ZN]**

8. कहानी कला की दृष्टि से 'ध्रुवयात्रा' की समीक्षा कीजिए। **[2020 ZF]**
9. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए। **[2020 ZG, ZC, ZD]**
10. उद्देश्य की दृष्टि से 'ध्रुवयात्रा' की समीक्षा कीजिए।
11. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की समीक्षा कीजिए।
12. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की कथावस्तु संक्षेप में लिखिए।
13. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की भाषा-शैली की समीक्षा कीजिए।
14. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए। **[2020 ZH, ZJ, ZM]**
15. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के तथ्यों पर प्रकाश डालिए। **[2020 ZB]**

कथा साहित्य

यह संकलन

प्रस्तुत संकलन में हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ कहानीकारों की छह चुनी हुई कहानियाँ संकलित हैं। विविध सामाजिक सन्दर्भों को आधार बनाकर विविध भाषा-शैलियों में गढ़ी हुई इन कहानियों में से हर एक की अपनी अलग गुणवत्ता है। इन कहानियों के माध्यम से छात्र-छात्राओं को हिन्दी कहानी के पुराने और नये रूपों का समग्र परिचय मिल सकेगा। दोनों प्रकार की कहानियों का संख्यात्मक अनुपात बराबर-बराबर है। निश्चय ही आदर्श और यथार्थ का यह सन्तुलन अध्येताओं को हिन्दी साहित्य और जीवन की एक स्वस्थ समझदारी दे सकेगा। इन कहानियों के द्वारा छात्र-छात्राओं को भारतीय ग्राम और नगर-समाज की सही झलक तो दिखायी देगी ही, उनमें अपनी संस्कृति और अपने राष्ट्र के प्रति एक ऐसा दायित्व-बोध उपज सकेगा जो उन्हें विचारशील नागरिक बनने की सजग प्रेरणा प्रदान करेगा।

'खून का रिश्ता' कहानी में भीष्म साहनी ने सिद्ध किया है कि आर्थिक दयनीय स्थिति में खून के रिश्ते भी बेमानी सिद्ध होते हैं। मंगलसेन चाचा के साथ भी ऐसा ही हुआ। फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'पंचलाइट' में ग्रामीण अंचल का वास्तविक चित्र दिखाई देता है। कोमल संवेदना को कुचलती शिवानी की कहानी 'लाटी' परिस्थितियों की निष्ठुरता से घायल पति की पीड़ा का अहसास पाठकों को कराती है। अमरकान्त जी ने 'बहादुर' कहानी के माध्यम से समाज के वर्ग भेद को उजागर किया है। शिवप्रसाद सिंह की 'कर्मनाशा की हार' कहानी में समाज में व्याप्त रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों पर व्यंग्य किया गया है। जैनेन्द्र कुमार द्वारा लिखित कहानी 'ध्रुवयात्रा' भी अत्यन्त रुचिकर है।

हमें विश्वास है कि यह संकलन अध्येताओं को हिन्दी कहानी का सही परिचय दे सकेगा।

भूमिका

कहानी गद्य-साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा मानी जाती है। आरम्भ में मनोरंजन और आत्म-परितोष के लिए कहानी कही-सुनी जाती थी। बाद में व्यक्ति और समाज के महत्त्वपूर्ण अनुभवों को प्रकट करने के लिए तथा नीति और उपदेश, सामाजिक सुधार, बाह्य एवं आन्तरिक अनुभूतियों आदि की अभिव्यक्ति के लिए भी कहानी को माध्यम बनाया गया। कहानी अपनी वर्णनात्मक विशेषता के कारण अत्यन्त प्रभावशाली विधा रही है।

निबन्ध की तुलना में कहानी गद्य की बहुत सरल विधा है। कदाचित इसीलिए उसका चलन भी निबन्ध के पहले से है। कहानी कहना और सुनना सभी अवस्था के लोगों को प्रिय है। पर कहानी केवल मनोरञ्जन का ही साधन नहीं है, वह गहन विचारों और सन्देशों को भी वहन करती है। विश्व-साहित्य में ऐसी भी कहानियाँ लिखी गयी हैं जो देश और काल की सीमा का अतिक्रमण करती हुई मानव-मन पर अपना स्थायी प्रभाव छोड़ गयी हैं।

परिभाषा

कहानी के लक्षण और परिभाषा के सम्बन्ध में विचारकों के अलग-अलग मत हैं। **प्रेमचन्द** के अनुसार, ''कहानी ऐसा उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल और बेलबूटे सजे हुए हों, बल्कि वह एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।''

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने कहानी की परिभाषा इस प्रकार दी है—''सादे ढंग से केवल कुछ अत्यन्त व्यञ्जक घटनाएँ और थोड़ी बातचीत सामने लाकर क्षिप्र गति से किसी एक गम्भीर संवेदना या मनोभाव में पर्यवसित होनेवाली गद्य विधा कहानी है।''

एडगर एलन पो का अभिमत है कि ''कहानी एक निश्चित प्रकार का वर्णनात्मक गद्य है जिसके पढ़ने में आधे से लेकर एक घण्टे का समय लगता है।''

इन तथा अन्य परिभाषाओं के आधार पर कहानी के लक्षण निम्नांकित रूप में निर्धारित किये जा सकते हैं—

1. कहानी में एक ही विषय अथवा संवेदन का प्रस्तुतीकरण होता है।
2. कहानी का एक निश्चित उद्देश्य होता है तथा उसमें संवेदनात्मक अन्विति होती है।
3. मानवीय संवेदनाओं, अनुभूतियों एवं तथ्यों की रोचक व्यञ्जना होती है।
4. वस्तु तत्त्व (चरित्र, घटनाएँ, कथानक) का आकार लघु होता है।
5. मनोरञ्जन के साथ-साथ जीवन की शाश्वत समस्याओं का प्रकाशन भी कहानी का लक्ष्य है।

कहानी के तत्त्व

कहानी में 6 तत्त्वों की प्रधानता होती है—

(1) कथानक
(2) पात्र एवं चरित्र-चित्रण
(3) कथोपकथन (संवाद)
(4) वातावरण (देश-काल)
(5) भाषा-शैली
(6) उद्देश्य

कथानक

कहानी में कथानक सबसे प्रधान तत्त्व है। कहानी में वस्तुविन्यास अथवा कथानक का निबन्धन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है। घटना-प्रधान कहानियों में तो कथानक का ही विशेष महत्त्व है, परन्तु अन्य प्रकार की कहानियों में भी इसका महत्त्व कम नहीं है। कथानक के नियोजन पर ही कहानी की सफलता निर्भर करती है। वस्तुतः कथानक के बिना कहानी का कोई अस्तित्व ही नहीं है। यद्यपि अधुनातन कहानी में इस बात की भी चेष्टा की जाती रही है कि कथानक अनिवार्य न रहे, पर ऐसा कोई प्रयोग बहुत सफल नहीं हो सका है।

आज कहानियों में कथानक का निषेध तो नहीं हो सका, पर उसका ह्रास अवश्य लक्षित होता है और उसके स्थान पर मनःस्थितियों पर पड़नेवाले प्रभाव को महत्त्व दिया जाने लगा है। इस तरह कथानक का आधार क्षीण होता जा रहा है, यद्यपि कथानक के सूत्र किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहते ही हैं। जैनेन्द्रकुमार की 'एक रात', इलाचन्द्र जोशी की 'रोगी', उषा प्रियम्वदा की 'मछलियाँ', मन्नू भण्डारी की 'तीसरा आदमी' आदि कहानियाँ ऐसी ही हैं। कहानी का कथानक प्रभावोत्पादक, विचारोत्तेजक एवं जीवन के यथार्थ से सम्बद्ध होना चाहिए। कहानी का स्वरूप निश्चित करते समय कहानीकार को युग-बोध और भाव-बोध दोनों दृष्टियों से विचार करना चाहिए। कहानी में आरम्भ, उत्कर्ष और अन्त—तीन कथा-स्थितियाँ होती हैं और तीनों का ही अत्यधिक महत्त्व है। आरम्भ में परिचयात्मक स्वरूप धारण करते हुए कहानी परिस्थितिजन्य प्रभावों को एकत्र करती हुई अत्यन्त तीव्रता से उत्कर्ष बिन्दु पर पहुँचती है। इसीलिए कहा जाता है कि कहानी उस छोटी दौड़ की प्रतियोगिता की भाँति है, जिसमें आरम्भ से लेकर अन्त तक दौड़ की तीव्रता में कहीं कमी नहीं आती। इस दृष्टि से वस्तु-विन्यास के आरम्भ, मध्य और समापन—तीनों में गति की तीव्रता का नैरन्तर्य बराबर बना रहना चाहिए।

यदा-कदा ऐसी कहानियाँ भी मिलती हैं, जिनमें दुहरे कथानक होते हैं। नयी कहानियों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलेगी। ऐसी कहानियों में प्रभावान्विति खण्डित नहीं होती, कहानी के मूल भाव के अनुसार ही कथावस्तु की संरचना की जाती है। कथावस्तु में क्रमबद्धता के साथ-साथ कुतूहल एवं चमत्कार का भी विशेष महत्त्व है। तिलस्मी, जासूसी आदि कहानियों में चमत्कारपूर्ण योजना ही प्रधान हुआ करती है। कथानक में द्वन्द्व और संघर्ष का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। कभी-कभी द्वन्द्व चित्रण ही कहानी का मुख्य ध्येय बन जाता है। यह द्वन्द्व भौतिक भी होता है और मानसिक भी। कभी व्यक्ति को अपने समानधर्मी व्यक्ति से, कभी परिस्थितियों से और कभी स्वयं अपने अन्तःकरण के मनोभावों से लड़ना पड़ता है। द्वन्द्व से कथानक में नाटकीयता उत्पन्न हो जाती है और कहानी रुचिकर हो जाती है।

कथानक में कल्पना संभाव्य और असंभाव्य दोनों रूपों में व्याप्त होती है। लेखक जिस विषय को कहानी का प्रतिपाद्य बनाता है, उसे प्रस्तुत करने के लिए वह ऐसे कारण, कार्य और परिणाम की योजना करता है जो कथ्य को प्रभावोत्पादक बनाकर यथार्थ धरातल पर प्रतिष्ठित कर सके। इसके लिए उसे पूरे कथानक को परिच्छेदों में विभाजित करना पड़ता है अथवा ऐसे मोड़ देने पड़ते हैं कि कथ्य प्रभावान्विति का कारण बन सके।

कथानक में आदि, मध्य और अन्त—तीन महत्त्वपूर्ण स्थल हैं। आदि से अन्त तक कहानी की एकोन्मुखता बनी रहती है। वस्तु के अनुरूप ही कहानी के कथानक की योजना करनी पड़ती है। आदि में वह पीठिका तैयार करनी पड़ती है जिस पर कहानी का अन्त प्रतिष्ठित होता है। कहानी का मध्य-बिन्दु वह स्थल है, जहाँ कहानी अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर पाठक की उत्सुकता को विशेष तीव्र एवं संवेदनशील बनाती है। कहानी को वास्तविक आकार मध्य में ही मिलता है। कभी-कभी कहानी में मध्य बिन्दु का पता नहीं लगता और कथानक की चरम सीमा अन्त में व्यक्त होती है। इस दृष्टि से समापन का स्थल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यहीं पहुँचकर कहानी अपनी सम्पूर्ण संवेदनशीलता, प्रभावोत्पादकता एवं पूर्णता का परिचय देती है। प्रभाव की पूर्णता समापन का लक्ष्य है। सारी जिज्ञासा की वृद्धि और कुतूहल की समाप्ति यहीं आकर होती है। मूलभाव की प्रतीति इसी स्थल पर होती है। कहानी का अन्त लघु, सांकेतिक और स्पष्ट होना आवश्यक है। लेखक को यह ध्यान में रखना पड़ता है कि अन्त ऐसे स्थल पर हो, जहाँ कहानी का सम्पूर्ण अन्तरंग ऐसे बिन्दु पर पहुँचकर अनावृत हो जाय कि आगे कुछ कहने की आवश्यकता न रहे। कुछ कहानियाँ ऐसी भी लिखी गयी हैं जिनमें कथावस्तु, घटनाओं और कार्य-कारण आदि की स्थिति एकदम नगण्य है।

पात्र एवं चरित्र-चित्रण

कहानी के मूल भाव के अनुसार ही पात्रों के व्यक्तित्व, चरित्र एवं प्रवृत्तियों का निर्धारण होता है। मानव का चरित्र जब बहुमुखी और जटिल नहीं हुआ था तब बाह्य घटनाओं का चमत्कारपूर्ण वर्णन कहानी के आकर्षण का केन्द्र था। साहित्य की सभी विधाओं में घटनाओं और संघर्ष की ही प्रधानता थी। चरित्रों का विभाजन—धीरोदात्त, धीरललित, धीरोद्धत और धीरप्रशान्त रूप में करके

उनकी सीमाएँ निर्धारित कर दी गयी थीं और उनके गुण-दोष तालिकाबद्ध थे। परन्तु 19वीं शती के आरम्भ में वैज्ञानिक प्रगति एवं मनोवैज्ञानिक उपलब्धियों ने साहित्य की निर्धारित मान्यताओं में युगान्तर उपस्थित किया। सामाजिक आचार-विचार एवं मान्यताओं में भी परिवर्तन हुआ और चरित्रों में अनेक जटिलताओं एवं रूपों की सृष्टि हुई। अब मानव-चरित्र कई स्तरों में विभाजित हो गया है। एक ही व्यक्ति के चरित्र में द्विव्यक्तित्व और बहुव्यक्तित्व का रूप दिखायी पड़ता है। भौतिकवादी और व्यावसायिक दृष्टि की प्रधानता होने से प्राचीन आदर्शवादी एवं नैतिक दृष्टि बहुत पीछे छूट गयी है। प्रत्येक मनुष्य अथवा मनुष्य द्वारा सम्पादित कोई विशिष्ट कार्य अथवा मनुष्य से सम्बद्ध कोई घटना ही इस मूलभाव के अन्तर्गत रहती है। घटना अथवा वातावरण को भी सजीव रूप देने के लिए, उसे प्राणमय बनाने के लिए मनुष्य को प्रतिष्ठित करना पड़ता है। निष्कर्ष यह है कि कहानी का मूलभाव चाहे जो भी हो, मानव-चरित्र की प्रतिष्ठा ही कहानी का प्रधान विषय है। कहीं मनुष्य मूलभाव से सीधे सम्बद्ध होता है और कहीं प्रकारान्तर से। कहानी में पात्र और कथावस्तु का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होता है। दोनों मिलकर कहानी के केन्द्रीय भाव को व्यक्त करते हैं। कुछ पात्र सामान्य होते हैं और कुछ प्रतीकात्मक। सामान्य पात्रों के भी दो वर्ग होते हैं—कुछ वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं और कुछ व्यक्ति का। कहानी लघु प्रसारवाली होती है। इसलिए उसमें नायक के चरित्र को ही अधिक उभारकर प्रस्तुत किया जाता है। दूसरे पात्रों के चरित्र की प्रमुखता होने पर कहानी का मूल भाव आच्छन्न हो जायगा। कहानी में उपन्यास की भाँति चरित्रांकन में वैविध्य की गुंजाइश नहीं होती। इसमें चरित्र या जीवन के किसी एक पक्ष की झलक मिलती है। किसी एक विशेष परिस्थिति में रखकर नायक की किसी एक प्रवृत्ति का उद्‌घाटन करना ही कहानीकार का अभीष्ट हुआ करता है। चरित्रांकन की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि चरित्र गतिशील हो और यथार्थ जीवन से सम्बद्ध हो। चरित्र-चित्रण यदि पुरानी रूढ़ियों एवं सिद्धान्तों के अनुसार किसी एक घिसी-पिटी परिपाटी से किया जायगा तो वह पत्थर की मूर्ति की तरह निर्जीव हो जायगा।

आज के बौद्धिक युग का पाठक चारित्रिक वैचित्र्य को देखना व समझना चाहता है। अन्तर्जगत् के भावात्मक संघर्ष में उसे एक विशेष प्रकार का रस मिलने लगा है। पहले की कहानियों में कुतूहल एवं जिज्ञासा जगाने और उसे तृप्त करने की प्रवृत्ति ही प्रधान थी, परन्तु आजकल का पाठक बौद्धिक दृष्टि से बहुत आगे बढ़ गया है। वह कहानी में चरित्र की सूक्ष्मता और चारित्रिक भंगिमाओं का वैविध्य देखने की आकांक्षा रखता है। इसीलिए आज की कहानियों में वैविध्य-विधायिनी मनोवृत्तियों के उद्‌घाटन की प्रवृत्ति अधिक दिखलायी पड़ती है। वेशभूषा, बाह्य क्रियाकलाप, शारीरिक द्वन्द्व आदि स्थूल बातें अब हमें तृप्त नहीं करतीं। आज के पाठक की इच्छा होती है कि वह विचित्र चरित्र के मनोलोक में प्रवेश कर उसके अन्तर्जगत् की झाँकी प्राप्त कर सके। तात्पर्य यह कि आज की सबसे उत्तम कहानी का आधार मनोवैज्ञानिक सत्य है। वातावरण एवं परिस्थितियों का अब कोई स्वतन्त्र महत्त्व नहीं रह गया है। वे पात्रों के सूक्ष्म मनोभावों के प्रस्तुतीकरण में योगदान करते हैं। चरित्र का युद्धस्थल, उसका सारा संघर्ष अब बाह्य से अधिक आन्तरिक हो गया है। आन्तरिक द्वन्द्वों के अनुरूप ही बाहरी घटनाएँ और क्रिया-व्यापार मुख्य रूप से प्रस्तुत किये जा रहे हैं। मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन के साथ-साथ आज ऐसे चरित्रांकन की माँग है जो ईमानदारी के साथ मानव के यथार्थ स्वरूप की अवतारणा कर सके। चरित्रचित्रण की तीन प्रणालियाँ कहानियों में दिखलायी पड़ती हैं—वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और नाटकीय।

वर्णनात्मक प्रणाली के द्वारा लेखक स्वयं चरित्र की विशेषताओं का वर्णन करता है। विश्लेषणात्मक कहानियों में विभिन्न मानसिक स्थितियों का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए लेखक चरित्र की विशेषताओं का उद्‌घटन करता है तथा सांकेतिक प्रणाली अपनाकर चरित्र के महत्त्वपूर्ण अंशों की ओर संकेत कर देता है और मूल्यांकन पाठकों पर छोड़ देता है। नाटकीय पद्धति में वार्त्तालाप और क्रिया-व्यापार की प्रधानता होती है।

कथोपकथन

कथोपकथन के मुख्यतः दो कार्य होते हैं—पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उद्‌घाटित करना और कथा-प्रवाह को आगे बढ़ाना। कहानी में कथोपकथन को पूर्ण नियन्त्रित, चमत्कारयुक्त एवं लघुप्रसारी होना चाहिए। कहानी के आरम्भ में जिज्ञासा और कुतूहल को जगाने के लिए बहुधा नाटकीय संवादों की योजना करनी पड़ती है। परिस्थिति एवं पात्रों को जोड़ने के लिए और आन्तरिक भावों एवं मनोवृत्तियों के उद्‌घाटन के लिए संवाद-तत्त्व (कथोपकथन) की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। कथोपकथन में मात्रा और औचित्य पर भी ध्यान रखना जरूरी है। आवश्यकता से अधिक वार्त्तालाप उबा देनेवाला होता है और औचित्य का विचार न करके की गयी संवाद-योजना कहानी की प्रभावान्विति में बाधा डालती है। अतः पात्र की शिक्षा-दीक्षा, देश-काल और सामयिक स्थिति के अनुरूप ही संवादों की योजना की जानी चाहिए।

चरित्रप्रधान कहानियों में व्यक्तित्व और उसकी प्रवृत्तियों का परिचय देने के लिए कथोपकथन विशेष महत्त्वपूर्ण होता है। वार्त्तालाप द्वारा ही चारित्रिक विशेषताएँ प्रकट होती हैं। पात्र का अन्तरंग वाणी के माध्यम से उद्‌घाटित होता है। इसके लिए भावानुरूप वाक्य-

योजना एवं शब्द-चयन अपेक्षित है। कही जानेवाली बात किस युग, काल अथवा देश की है, इसका भी कथोपकथन की योजना करते समय ध्यान रखना आवश्यक है। अभिवादन, सम्बोधन, प्रेम, क्रोध आदि को व्यक्त करने के लिए औचित्य एवं मर्यादा को ध्यान में रखकर भाषा का प्रयोग आवश्यक है। इसी प्रकार विभिन्न वर्गों जैसे मजदूर, किसान, अध्यापक, ग्रामीण और नगरीय चरित्रों की दृष्टि से भी भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। व्यावहारिक एवं भावात्मक स्थलों के अनुसार विषयानुरूप संगति बैठानेवाली वाक्य-योजना से ही कहानी सुरुचिपूर्ण एवं मार्मिक बनती है। कथानक, विषय-प्रतिपादन एवं पात्र-योजना की दृष्टि से कथोपकथन की भाषा को व्यावहारिक स्वरूप देना पड़ता है। मुहावरों का सामाजिक एवं प्रसंगानुकूल प्रयोग भी कहानीकार के लिए आवश्यक है। शिष्ट हास्य और व्यंग्य से समन्वित होकर कथोपकथन सजीव हो जाता है।

कथोपकथन के प्रायः दो रूप मिलते हैं—विशुद्ध नाटकीय और विश्लेषणात्मक। विशुद्ध नाटकीय ढंग से लेखक अपनी ओर से कुछ भी नहीं जोड़ता। दो पात्र परस्पर वार्त्तालाप करते हैं। विश्लेषणात्मक ढंग में लेखक अपनी ओर से पात्रों के सम्बन्ध में उनकी मुद्राओं और भाव-भंगिमाओं का उद्घाटन करने के लिए कथोपकथन की योजना करता है। प्रथम प्रकार के कथोपकथन की प्रणाली प्रेमचन्द की कहानी 'सुजान भगत' और दूसरे प्रकार के कथोपकथन का उदाहरण भगवतीचरण वर्मा की 'प्रायश्चित्त' कहानी में मिलता है।

वातावरण

वातावरण के अन्तर्गत देश-काल और परिस्थिति आती है। लेखक घटना और पात्रों से सम्बन्धित परिस्थितियों का चित्रण सजीव रूप में करता है। सम्पूर्ण परिस्थितियों की योजना साभिप्राय और क्रमिक ढंग से की जाती है। प्रकृति, ऋतु, दृश्य आदि का अत्यन्त संक्षिप्त और सांकेतिक रूप में वर्णन करके किसी घटना अथवा परिणाम को सजीव एवं यथार्थ बना दिया जाता है। प्रेमचन्द की 'सुजान भगत' और प्रसाद की 'पुरस्कार' कहानी में इस प्रकार की योजनाएँ मानवीय प्रवृत्तियों एवं परिस्थितियों के अनुकूल की गयी हैं। वातावरण के दृश्य-विधान से न केवल चरित्र की मनःस्थिति पर प्रकाश पड़ता है, वरन् प्रेम, शोक आदि व्यापार सजीव बन जाते हैं। 'उसने कहा था' कहानी में वातावरण का यह चित्र लहनासिंह की मृत्यु की ओर संकेत देते हुए परिस्थिति को कितना बिम्बग्राही बना देता है—''लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ क्षयी नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी, जैसी बाणभट्ट की भाषा में दन्तवीणोपदेशाचार्य कहलाती है।''

मनुष्य का रचनात्मक विकास और ह्रास बहुत कुछ वातावरण की ही देन है। संवेदना यदि कहानी की आत्मा है तो वातावरण उसका शरीर। 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'बिसाती', 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी', 'रोज' और 'मक्रील' आदि कहानियाँ इस कथन की सार्थकता सिद्ध करती हैं। वातावरण की दृष्टि से नयी कहानियों में 'परिन्दे', 'मिस पाल' तथा 'मलबे का मालिक' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं।

वातावरण के प्रस्तुतीकरण की दो पद्धतियाँ हैं। पहले प्रकार में विषयारम्भ प्रकृति चित्रण से किया जाता है। इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण में कहानी का प्रतिपाद्य सम्पूर्णतः ध्वनित हो जाता है। प्रकृति के खण्ड-चित्रों के विधान के द्वारा कथानक के अर्थ की विवृत्ति होती है और प्रतीक-पद्धति से कथानक का धरातल रसात्मक हो जाता है। प्रकृति का आधार पात्रों की स्थिति को प्राणमय बना देता है।

दूसरे प्रकार की पृष्ठभूमि में देश-काल और परिस्थितियों का आञ्चलिक और स्थानीय रंग उपस्थित किया जाता है। कृतिकार का रचना-कौशल इस बात में है कि वह जीवन की विभिन्न वस्तु-स्थितियों को देश और काल के परिवेश में इस प्रकार प्रस्तुत करे कि स्थानीय चित्र प्रभावपूर्ण हो जाय। वृन्दावनलाल वर्मा की कहानी 'शरणागत' में बुन्देलखण्ड की झलक और उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानी 'डाची' में प्रान्तीय भाषा, रीति-रिवाज, वेश-भूषा और क्रिया-कलाप का ऐसा ही चित्र-विधान दिखलायी पड़ता है। इसी प्रकार विभिन्न तत्त्वों के सामूहिक संगठन की दृष्टि से परिवेश की परिधि भी निर्धारित की जाती है। कहानी के इतिवृत्त को विभिन्न परिच्छेदों एवं परिस्थितियों में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक विच्छेद का अपना एक अलग परिवेश होता है, जो अपने में पूर्ण होता है।

वातावरण कहानी के इष्ट-प्रतिपादन के लिए और प्रभाव की एकता स्थापित करने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। करुणा, आश्चर्य, प्रेम, वात्सल्य आदि की सरसता वातावरण के प्रभाव से मुखरित होती है। वातावरण का प्रभाव मानसिक होता है। वह कथ्य की प्रेषणीयता के लिए पाठक के मानस को तैयार करता है। कुछ कहानियों में तो वातावरण इतना प्रधान होता है कि वह अंगी का रूप धारण कर लेता है। ऐसी वातावरण-प्रधान कहानियाँ प्रभाव की दृष्टि से बड़ी सजीव और कल्पनाश्रयी होती हैं।

भाषा-शैली

भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का माध्यम भाषा है और अभिव्यक्ति का ढंग शैली है। सरल एवं बोधगम्य भाषा के द्वारा

ही कहानी को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। भाषा की क्लिष्टता और दुरूहता से कथन का अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो पाता और कहानी अस्वाभाविक हो जाती है। काल और पात्र की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए भाषा में स्वाभाविकता अपरिहार्य है। भाषा जितनी ही सरल और भावाभिव्यञ्जक होगी, उतनी ही प्रभावशाली होगी। प्रेमचन्द की कहानियों का प्रभाव पाठकों पर इसीलिए पड़ता है कि उनकी भाषा अत्यन्त सरल और सरस है।

भाषा को समर्थ और प्रभावयुक्त बनाने के लिए शब्दों के चयन पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। चित्रात्मकता एवं प्रवाहमयता के साथ-साथ अर्थ की उपयुक्ता भी अपेक्षित है। स्वाभाविक भाषा संवेदनशील होती है। विभिन्न सन्दर्भों में कौन-सा शब्द सही चेतना एवं अर्थ को व्यंजित कर सकता है, इसका चुनाव रचनाकार की कलात्मक संवेदना पर निर्भर करता है। कहानी का आकार अत्यन्त लघु होता है, अतएव सूक्ष्म सन्दर्भों को स्पष्ट करने के लिए भाषा में संकेतों का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार की सांकेतिक भाषा से व्यञ्जना-शक्ति बढ़ जाती है। आज की कहानियों में अनुभूति की प्रामाणिकता को चित्रित करने के लिए सांकेतिक भाषा का प्रयोग बढ़ गया है।

साधारण से साधारण कथानक में भी कुशल लेखक अपनी सुन्दर शैली से प्राण-प्रतिष्ठा कर देता है। शब्दों की सम्मोहन-शक्ति के द्वारा वह पाठकों को मन्त्रमुग्ध कर देता है। आधुनिक कहानियों में मनस्तत्त्वों के निरूपण और अवचेतन मन के विभिन्न स्तरों को खोलने के लिए विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया जा रहा है। इसी प्रकार प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से कुछ नयी विधियों का प्रयोग किया जाने लगा है। कहीं कहानीकार परिदृश्य पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता हुआ कमेण्टरी की विधि अपनाता है (अमरकान्त की 'घुड़सवार' कहानी) और कहीं 'फ्लैश बैक' यानी पूर्वदीप्ति की विधि का अनुसरण करते हुए पूर्व घटित अंश को सहज रूप से वर्तमान से सन्दर्भित करके प्रस्तुत करता जाता है। शिवप्रसाद सिंह की **'कर्मनाशा की हार'** इसका सशक्त उदाहरण है। दूरवीक्षण और अन्वीक्षण की विधियाँ भी वैज्ञानिक जगत् के अनुभव से ग्रहण की गयी हैं। एक में कहानीकार दूरस्थ वस्तु को निकटस्थ के रूप में चित्रित करता है, दूसरी में वह वस्तु की उस सूक्ष्मता को बहुत बारीकी से प्रस्तुत करता है जो साधारणतः लोगों को दिखायी नहीं देती। भीष्म साहनी की कहानी 'अहं ब्रह्मास्मि' रिपोर्ताज शैली में लिखी गयी ऐसी ही कहानी है जो आधुनिक युग में एक नयी साहित्यिक विधि से सम्बद्ध है।

उद्देश्य

कहानी का उद्देश्य पुष्प में गन्ध की भाँति छिपा रहता है। प्राचीन कहानियों का उद्देश्य आध्यात्मिक विवेचना अथवा नैतिक उपदेश प्रदान करना था। कालान्तर में मनोरञ्जन करना अथवा महान् चरित्र के शौर्य आदि गुणों का प्रदर्शन करना कहानी का उपजीव्य बन गया। मनोरंजन अथवा उपदेश के साथ ही शाश्वत सत्य का उद्घाटन करना भी कथा का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन है।

प्रेमचन्द-युग में आदर्श की स्थापना और शाश्वत सत्य का उद्घाटन कहानी का प्रमुख उद्देश्य बन गया था।

कोई भी घटना, परिस्थितियाँ और कार्य लेखक के लिए निरपेक्ष रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। प्रत्येक कहानी के मूल में कोई केन्द्रीय भाव अवश्य छिपा होता है, जो कहानी का मौलिक आधार बनता है। एक ही घटना को लेकर अनेक प्रकार की कहानियाँ लिखी जा सकती हैं, परन्तु प्रत्येक का दृष्टिकोण भिन्न होने के कारण कथा का रूप बदल जाता है। यही कहानीकार की मौलिकता है। कहानी का केन्द्रीय भाव ही वह हेतु या उद्देश्य है, जिसके लिए कहानी लिखी जाती है। संवेदना की विशिष्ट इकाई के मूल में लेखक का एक निर्दिष्ट लक्ष्य होता है। प्रभावान्विति और संवेदनात्मक इकाई के कारण ही कहानी मुक्तक काव्य और एकांकी की समीपवर्ती कही जाती है।

हिन्दी कहानी की विकास-यात्रा

देश में कहानी का आरम्भ वैदिक युग में ही हो गया था। ऋग्वेद के यम-यमी, पुरूरवा-उर्वशी आदि के संवाद, उपनिषदों के रूपात्मक व्याख्यान, नहुष, ययाति आदि के उपाख्यान तथा ऋषियों-मुनियों की कथाएँ भारतीय कहानी के प्राचीनतम रूप हैं। लौकिक संस्कृत में उपदेश और नीतिप्रधान कथाओं का प्राचुर्य मिलता है। वृहद्कथामंजरी, कथासरित्सागर, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थ तथा मुंज, भोज, विक्रमादित्य आदि के शौर्य और प्रणय की गाथाओं को लेकर लिखी गयी रचनाएँ कहानी के ही प्राचीन रूप हैं। संस्कृत के पश्चात् पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में बौद्ध और जैन धर्म सम्बन्धी अनेकानेक कथायें लिखी गयी हैं। अपभ्रंश भाषा में चरित्र-काव्यों तथा कथा-काव्यों का लम्बा इतिहास मिलता है।

हिन्दी में आधुनिक कहानी के उदय के पूर्व प्राचीनकाल में संस्कृत और प्राकृत की परम्परा में कथा-साहित्य की रचना हुई।

इसका आरम्भिक रूप काव्यमय है। इस कथा-साहित्य की एक परम्परा चारणों तथा अन्य कवियों द्वारा विकसित हुई, जिसमें ऐतिहासिक, पौराणिक कथा-नायकों में कल्पना का पुट देकर उनके चरित्र-श्रवण से पुण्य का लोभ दिखाया गया। कथा-साहित्य की दूसरी परम्परा सूफियों द्वारा विकसित हुई। मृगावती, मधु-मालती, पद्मावत, चित्रावली, ज्ञानदीप, इन्द्रावती आदि ऐसे ही प्रेमाख्यानक काव्य हैं।

हिन्दी कहानियों का तीसरा प्राचीन रूप 'किस्सा', 'वृत्तान्त' आदि के रूप में मिलता है। भारतेन्दुयुगीन पत्र-पत्रिकायें इस प्रकार की कहानियों से भरी पड़ी हैं। सिंहासनबत्तीसी, बैतालपचीसी, माधवानल-कामकन्दला, राजा भोज का सपना, रानी केतकी की कहानी, देवरानी-जेठानी आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। इसी प्रकार संस्कृत-भाषा में कथा-साहित्य की जो पद्धति प्रारम्भ हुई, वह किंचित् परिवर्तन के साथ हिन्दी में भारतेन्दु तक चली आयी है। ये कहानियाँ, कथा, आख्यायिका, वृत्तान्त, वार्त्ता, किस्सा आदि अनेक रूपों में लिखी जाती रही हैं। इनका कोई स्वरूप भी निर्धारित नहीं हो सकता। ये कहानियाँ या कथाएँ गद्य-पद्य दोनों माध्यमों से लिखी जाती थीं। इनमें अप्राकृतिक तथा अतिप्राकृतिक तत्त्वों का प्राधान्य रहता था। भूत-प्रेत, पशु-पक्षी आदि कथा के विकास में सहायक होते थे। घटनाएँ नितान्त अविश्वसनीय और आश्चर्यजनक रहती थीं। इनमें स्वाभाविकता का अभाव था।

आधुनिक कहानी परम्परा और स्वरूप की दृष्टि से प्राचीन कहानी से भिन्न है। आज की कहानी का एक निश्चित लक्ष्य होता है। वह अस्वाभाविक घटनाओं और अतिमानवीय पात्रों का घटाटोप नहीं होती है। आज की कहानी जीवन के बहुत निकट आ गयी है। वह जीवन में यथार्थ की प्रतिच्छाया है। वह आज अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त माध्यम बन गयी है। आज की कहानी मानव जीवन के किसी एक पक्ष अथवा घटना का सूक्ष्मता के साथ चित्रण करती है। इसका सम्बन्ध सामयिक जीवन से होता है। वह यथार्थ को प्रस्तुत करती है।

यूरोपीय कहानी का प्रभाव हिन्दी-कहानी पर आरम्भ में बंगला-कहानी के माध्यम से पड़ा। अमेरिका और यूरोप में आधुनिक कहानी का जन्म 19वीं शताब्दी के प्रथम चरण में हो गया था। वहाँ के प्रारम्भिक कहानी-लेखकों में हाफमैन, जेकब, ग्रिम, हाथर्न, पो, ब्रेटाहार्ट आदि का नाम लिया जाता है। पो ने सर्वप्रथम कहानी का स्वरूप और उसके लक्षण निर्धारित किये। इसी समय रूस में गांगोल, तुर्गनेव आदि कहानियाँ लिख रहे थे।

आधुनिक हिन्दी-कहानी का प्रारम्भ एक प्रकार से द्विवेदीकाल में हुआ। बंगला-भाषा से सम्पर्क, नयी शिक्षा-पद्धति, सामाजिक एवं राजनीतिक आन्दोलन, गद्य के परिष्कार आदि के परिणामस्वरूप इस विधा का सूत्रपात हुआ। सरस्वती, इन्दु, सुदर्शन आदि पत्रिकायें हिन्दी कहानियों की जननी हैं।

हिन्दी की प्रथम आधुनिक कहानी कौन है, इस पर विवाद है। इस सम्बन्ध में सात कहानियों के नाम गिनाये जाते हैं—रानी केतकी की कहानी, इन्दुमती, गुलबहार, प्लेग की चुड़ैल, ग्यारह वर्ष का समय, पण्डित और पण्डितानी तथा दुलाईवाली। रचनाकाल की दृष्टि से इनमें रानी केतकी की कहानी (इंशाअल्ला खां) सबसे पुरानी है। किन्तु कहानी-कला की दृष्टि से उसको आधुनिक नहीं कहा जा सकता। इसकी रचना प्राचीन कथा पद्धति पर हुई है। कथानक, पात्र तथा भाषा सभी इसे प्राचीन कथाओं के निकट ले जाते हैं। शेष छह कहानियों में किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' प्रथम है। यह सन् 1900 में 'सरस्वती' में छपी थी। आरम्भ में कुछ आलोचक इसे मौलिक कहानी नहीं मानते थे। वे उसे शेक्सपीयर के 'टेम्पेस्ट' का रूपान्तर प्रमाणित करते थे और रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' अथवा बंग-महिला की 'दुलाईवाली' को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते थे। किन्तु अब यह स्पष्ट हो गया है कि 'इन्दुमती' एक मौलिक कहानी है। अतः यह हिन्दी की प्रथम आधुनिक कहानी मानी जा सकती है।

द्विवेदी-युग में मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार की कहानियाँ लिखी गयीं। एक ओर संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी आदि भाषाओं से कहानियों के अनुवाद हुए, दूसरी ओर जीवन की झाँकी उपस्थित करनेवाली आदर्शवादी और यथार्थवादी मौलिक कहानियों का भी सृजन हुआ। इस युग के प्रमुख कहानीकारों में किशोरीलाल गोस्वामी, गिरिजाकुमार घोष, गोपालराम गहमरी, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', जयशंकर प्रसाद और प्रेमचन्द के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक आदि सभी विषयों पर कहानियाँ लिखी गयीं। इस काल में घटनाप्रधान, चरित्रप्रधान, वातावरणप्रधान तथा भावप्रधान कहानियों की अधिकता रही है। शैली की दृष्टि से इस समय आत्म-कथात्मक से लेकर स्वप्न-शैली तक में कहानियाँ लिखी गयी हैं। कहानीकारों में पार्वतीनन्दन, सूर्यनारायण दीक्षित तथा रूपनारायण मुख्य हैं। गदाधरसिंह ने 'कादम्बरी' का, जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी ने 'हर्षचरित' और 'रत्नावली' का तथा सूर्यनारायण दीक्षित ने 'जैमिनीकुमार' का अनुवाद किया। बंगला की कहानियों का अनुवाद पार्वतीनन्दन, बंग महिला आदि ने प्रस्तुत किया।

मौलिक कहानीकारों में किशोरीलाल ने सामाजिक कहानियाँ लिखीं। 'चन्द्रिका', 'इन्दुमती' और 'गुलबहार' आपके कहानी-

संग्रह हैं। इनकी कहानियों पर जासूसी उपन्यासों का प्रभाव देखा जा सकता है। रामचन्द्र शुक्ल मूलतः निबन्धकार और आलोचक के रूप में प्रसिद्ध हैं, किन्तु उन्होंने 'ग्यारह वर्ष का समय' नामक एक कहानी भी लिखी। इसी प्रकार महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कुछ कहानियाँ लिखीं जो 'सरस्वती' के विभिन्न अंकों में प्रकाशित हुईं। 'स्वर्ण की झलक' आपकी प्रसिद्ध कहानी है। इस समय के जासूसी कहानियाँ लिखनेवालों में गोपालराम गहमरी अग्रगण्य हैं। 'त्रिवेणी', 'तीन तहकीकात' तथा 'गल्पपंचक' आपके कहानी-संग्रह हैं। इन कहानियों में उपदेश की प्रवृत्ति पायी जाती है।

द्विवेदी-युग के उत्तरार्द्ध में हिन्दी-कहानी का उत्कर्ष दिखायी पड़ता है। इसमें कहानी-कला का परिष्कार होता है, शिल्प में प्रौढ़ता आती है और घटनाओं की अपेक्षा चरित्र को महत्त्व मिलता है। गुलेरी जी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' इसी समय 'सरस्वती' में छपी। इसके अतिरिक्त उनकी दो अन्य कहानियाँ 'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का काँटा' भी प्रकाश में आयी। 'उसने कहा था' कहानी कलात्मक प्रौढ़ता, नये शिल्प, सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण आदि की दृष्टि से अपने समय तक की सर्वोत्कृष्ट कहानी है। चतुरसेन शास्त्री इस युग के अन्तिम चरण के कहानीकार हैं। 'रजकण', 'अक्षत', 'बाहर भीतर', 'दुखवा मैं कासे कहूँ' आदि आपके प्रमुख संग्रह हैं। आपकी कहानियाँ सामाजिक यथार्थ को लेकर चली हैं। प्रसाद और प्रेमचन्द ने भी इसी समय हिन्दी-कहानी-जगत् में प्रवेश किया।

सन् 1911 में 'इन्दु' नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ और उसी वर्ष प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' प्रकाशित हुई। उसके बाद प्रसाद जी 'इन्दु' तथा अन्य पत्रिकाओं में निरन्तर कहानियाँ लिखते रहे। ये कहानियाँ पाँच संग्रहों—छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी और इन्द्रजाल में संकलित हैं। प्रसाद जी की कहानियों की पृष्ठभूमि सांस्कृतिक है जिसमें भावुकता, कल्पना और रोमान्स का समन्वय मिलता है। वे प्रेम के उन्मुक्त रूप के पक्षधर थे। उनकी कहानियों में प्रेम के विविध पक्ष और नारी-चरित्र के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। प्रसाद जी का नाटककार-रूप भी उनकी कहानियों में देखा जा सकता है। 'आकाशदीप', 'पुरस्कार' आदि कहानियों में नाटकीय संवादों और अभिनयात्मक पद्धति से पात्रों के चरित्र विकसित होते हैं। उनकी कहानियों की भाषा संस्कृतनिष्ठ और काव्यात्मक है। भारतीय संस्कृति के परिवेश में लिखी गयी उनकी कहानियाँ आदर्शवादी वर्ग में आती हैं।

हिन्दी में प्रेमचन्द की पहली कहानी 'सौत' सन् 1915 में 'सरस्वती' में छपी थी, यद्यपि उसके पूर्व वे धनपतराय और नवाबराय के नाम से उर्दू में कई कहानियाँ लिख चुके थे। सन् 1936 तक उन्होंने लगभग 300 कहानियों की रचना की, जो हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं (सरस्वती, माया, जागरण, मर्यादा, माधुरी, हंस, विशाल भारत आदि) में छपती रहीं। प्रेमचन्द अपने युग के श्रेष्ठतम कहानीकार थे। उन्होंने हिन्दी कहानी को विस्तृत आयाम दिया और कहानी को केवल मनोरंजन तक सीमित न रखकर जीवन से जोड़ा। कथानक के आधार पर उनकी कहानियों के तीन वर्ग बनाये जा सकते हैं– घटनाप्रधान, चरित्रप्रधान और भावप्रधान। उन्होंने अपने समय तक प्रचलित सभी शैलियों को अपनाया तथा सामाजिक, राजनीतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक आदि सभी विषयों पर कहानियाँ लिखीं। प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियों में घटनाओं की प्रधानता है। दूसरे चरण की कहानियों में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं को उठाकर उनका आदर्शमूलक समाधान खोजने की चेष्टा की गयी है।

राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह इस युग के आदर्शवादी कहानीकार हैं। 'कानों में कँगना' उनकी प्रसिद्ध कहानी है। विश्वम्भरनाथ और ज्वालादत्त शर्मा भी इसी युग के कहानीकार हैं। विश्वम्भरनाथ की कहानियों का एक संग्रह 'घूँघटवाली' उपलब्ध है। विश्वम्भरनाथ ने नारी-जीवन के विभिन्न पक्षों को अपनी कहानियों में उद्घाटित किया है। शर्मा जी भी प्रेमचन्द की परम्परा के कहानीकार हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों पर प्रबल कशाघात किया है। उनका दृष्टिकोण सुधारवादी था। वृन्दावनलाल वर्मा इस युग के ऐतिहासिक कथाकार हैं। इनकी कहानियों में बुन्देलखण्ड का जीवन उभरकर आया है। 'राखी', 'कलाकार का दण्ड', 'युद्ध के मोर्चे से' आदि इनकी लोकप्रिय कहानियाँ हैं। जी० पी० श्रीवास्तव की कहानियाँ हास्य-व्यंग्य की शैली में लिखी गयी हैं। 'लम्बी दाढ़ी' उनकी अच्छी कहानियों का संग्रह है।

द्विवेदी-युग के पश्चात् हिन्दी-कहानी में शिल्प एवं विषय दोनों दृष्टियों से परिवर्तन होता है। सामयिक, राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ हिन्दी-कहानी को भी प्रभावित करती हैं। राजनीति के क्षेत्र में यह समय अत्यन्त कोलाहल एवं अशान्ति का था। गाँधी के नेतृत्व में स्वाधीनता-आन्दोलन प्रबल होता जा रहा था। उधर सरकारी दमन भी उग्र होता जा रहा था। सन् 1914-19 में प्रथम विश्वयुद्ध हुआ। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों पर उसका व्यापक प्रभाव, सन् 1930 की गोलमेज परिषद्, सन् 1939 में काँग्रेस मन्त्रिमण्डलों द्वारा त्यागपत्र, द्वितीय विश्वयुद्ध, सन् 1942 की जनक्रान्ति और 15 अगस्त, 1947 ई० को भारत का स्वाधीन होना इन घटनाओं की पृष्ठभूमि में हिन्दी-कहानी का स्वरूप-परिवर्तन स्वाभाविक था। फलतः घुटन, निराशा, कुण्ठा का स्वर कहानी में आ गया। इस समय सामाजिक युग-बोध और यथार्थपरक कहानियाँ लिखी गयीं। कुछ कहानियाँ आत्मपरक दृष्टिकोण को भी लेकर लिखी गयीं। इस युग की कहानियाँ कथानक की दृष्टि से दो प्रकार की हैं—स्थूल कथानकवाली कहानियाँ, सूक्ष्म कथानकवाली कहानियाँ। विषय की दृष्टि से इस युग में सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, सैद्धान्तिक और ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी गयीं। इस युग की कहानियों का

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लक्षण है–उनका शैलीगत वैविध्य। नवीनता की दृष्टि से नाटकीय शैली (यशपाल : उत्तराधिकारी, रांगेय राघव : मृत्यु), पत्रात्मक शैली (अज्ञेय : सिग्नलर), डायरी-शैली (इलाचन्द्र जोशी : मेरी डायरी के नीरस पृष्ठ), प्रतीक-शैली (जैनेन्द्र : पाजेब), स्वगत-शैली (जैनेन्द्र : क्या हो) तथा स्वप्न-शैली (अज्ञेय : चिड़ियाघर) विशेष ध्यान आकर्षित करती हैं।

इस युग के प्रमुख कहानीकार हैं—जैनेन्द्रकुमार, सियारामशरण गुप्त, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ अश्क, रांगेय राघव, विष्णु प्रभाकर, अमृतराय आदि। जैनेन्द्रकुमार बुद्धिवादी लेखक हैं। उनकी कहानियों में व्यक्तिगत चरित्र एवं जीवन-दर्शन का वैशिष्ट्य मिलता है। उनके पात्रों का चरित्र-विश्लेषण मानसिक द्वन्द्व एवं घात-प्रतिघात से हुआ है। सियारामशरण गुप्त आदर्शवादी कहानीकार हैं। वे पिछली परम्परा के अधिक निकट हैं। उनकी कहानियों का संग्रह 'मानसी' नाम से प्रकाशित हुआ है। अज्ञेय मनोवैज्ञानिक कहानीकार हैं। इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं—'विपथगा', 'परम्परा', 'कोठरी की बात', 'शरणार्थी' और 'जयदोल'। अज्ञेय फ्रायड के दर्शन से बहुत प्रभावित हैं, इसीलिए उनकी कहानियों में सेक्स सम्बन्ध, कुण्ठा और घुटन का मनोविश्लेषण मिलता है। यशपाल मार्क्सवादी विचारधारा के प्रगतिशील लेखक हैं। वर्ग-वैषम्य और आर्थिक-वैषम्य उनकी कहानियों में मुख्य रूप से उभरे हैं। भगवतीचरण वर्मा ने अपनी कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन को यथार्थवादी अभिव्यक्ति दी है। उनकी कहानियों का धरातल अपेक्षाकृत वैयक्तिक एवं बौद्धिक है।

अमृतलाल नागर यथार्थवादी कहानीकार हैं। ग्राम्य जीवन की नग्न और वास्तविक परिस्थितियाँ उनकी कहानियों में पायी जाती हैं। उनकी शैली व्यंग्यात्मक है। अश्क जी की कहानियों में निम्न-वर्ग का यथार्थपरक चित्रण मिलता है। 'पलंग' उनकी कहानियों का अच्छा संग्रह है। उन्होंने समस्या प्रधान एवं मनोवैज्ञानिक कहानियाँ भी लिखी हैं। रांगेय राघव की कहानियाँ प्रगतिशील दृष्टिकोण से प्रभावित हैं। अमृतराय भी समाजवादी विचारधारा के कहानीकार हैं। 'एक साँवली लड़की', 'कस्बे का एक दिन' आदि उनकी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

स्वतन्त्रता के बाद आधुनिक कहानी में एक युगान्तर आया है। नयी कहानी के प्रथम चरण में ग्राम-कथाओं में भी ठहराव आ गया था। मनोवैज्ञानिक फार्मूलों अथवा नारेबाजी से भरा यथार्थवाद अब आकर्षण की वस्तु नहीं रह गया। इसी समय ग्रामीण क्षेत्रों से आये लेखकों ने ताजगी से भरे ग्राम-जीवन को नये शैली-शिल्प में प्रस्तुत किया। उनकी कहानियाँ पहले की कहानियों से भिन्न थीं। इन कथाकारों ने खण्डित जीवन की विभिन्न समस्याओं को लेकर कहानी के क्षेत्र में शिल्प और विषय की दृष्टि से नये प्रयोग किये हैं।

युगीन परिस्थितियों ने कहानी के स्वरूप-निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। स्वतन्त्रता के बाद देश के समक्ष अनेक समस्याएँ उपस्थित हो गयी हैं। सब कुछ पुराना ध्वस्त हो रहा और नयी रूप-रेखा प्रस्तुत हो रही है। सामाजिक जीवन और विचार दोनों ही क्षेत्रों में उत्क्रान्ति हो रही है। फलतः साहित्यकार के ऊपर नयी जिम्मेदारियाँ आयी हैं। प्रतिदिन स्थितियों में परिवर्तन हो रहा है और इस नवीन सामयिक सन्दर्भ से नयी कहानी भी प्रभावित है। कहानीकारों के सामने भाव-बोध के नवीन स्तर, सौन्दर्य-बोध के नये आयाम और कल्पना के नये क्षितिज उद्घाटित हो रहे हैं।

प्रेमचन्दोत्तर कहानियों में पिछले बीस वर्षों तक शहरी मध्यवर्गीय एवं निम्न-मध्यवर्गीय जीवन का चरित्र अंकित किया जाता रहा है। बाद के कथाकारों का ध्यान ग्रामीण सन्दर्भों की ओर गया। गाँव का जीवन तेजी से बदल रहा है। इस परिवर्तित जीवन-धरातल का स्वरूप आञ्चलिक कथाओं में बड़े सजीव और यथार्थ रूप में उभरता रहा है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में कहानी के अन्तर्गत यान्त्रिक जड़ता, व्यक्ति की कुण्ठा, मानसिक उलझन, संक्रमणकालीन मनःस्थिति आदि का चित्रण हो रहा है। नयी पीढ़ी के इन कथाकारों के प्रथम वर्ग में रेणु, मार्कण्डेय, भारती, निर्गुण, शैलेश मटियानी, शिवप्रसाद सिंह, शेखर जोशी, शिवानी आदि प्रमुख हैं। दूसरे वर्ग के कहानीकारों में मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी, निर्मल वर्मा, रघुवीर सहाय, भीष्म साहनी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें नगर-जीवन की जटिलताओं का विशेष अंकन हुआ है। इस युग की कहानियों में भोगे हुए जीवन को अभिव्यक्ति मिली है तथा संवेदना और सूक्ष्म निरीक्षण के सशक्त धरातल प्रकट हुए हैं। शहर और गाँव की भेदक-रेखा छोटी हुई है। शब्द-प्रयोग और शैली का तौर-तरीका बदला है। बिम्ब और सांकेतिकता के नये सन्दर्भ दिखलायी पड़ते हैं।

नयी कहानी का नया आन्दोलन जन्म ले रहा है और नये एवं पुराने के विवाद का दौर चल रहा है। आरम्भ में कहानी का जो शिल्प स्वीकार किया गया था, उसका उत्तरोत्तर विकास हुआ है। साठोत्तरी पीढ़ी के कहानीकारों की दृष्टि निःसन्देह अधिक खरी और प्रश्नात्मक है। ज्ञानरंजन की 'घण्टा', काशीनाथ सिंह की 'सुख', दूधनाथ सिंह की 'रक्तपात', रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी', महेन्द्र भल्ला की 'एक पति के नोट्स' आदि कहानियाँ युग के नये भयावह विडम्बनापूर्ण सम्बन्धों का साक्षात्कार करती हैं। गिरिराज किशोर, विजयमोहन सिंह, गोविन्द मिश्र, ममता कालिया, प्रयाग शुक्ल आदि की कहानियाँ आज के जटिल सन्दर्भों को उजागर करती हैं। इस प्रकार आज की हिन्दी कहानी शिल्प और कथ्य दोनों दृष्टियों से विश्व की कहानियों के समकक्ष आ गयी है।

संकलित कहानियों का सारांश

खून का रिश्ता

खाट की पाटी पर बैठा चाचा मंगलसेन हाथ में चिलम थामे मन-ही-मन भतीजे की शानदार शादी की बात सोच रहा था। बारात में वह समधियों के घर बैठा है। हाथ में दूध का गिलास लिये घूँट-घूँट पी रहा है। दूध पीते कभी बादाम की गिरी मुँह में आती है, कभी पिस्ते की। कोई उसके पास आकर पूछता है और दूध लाऊँ चाचा जी? थोड़ा-सा और? अच्छा ले आओ, आधा गिलास। तम्बाकू की कड़वाहट से भरे मुँह में मिठास आ गयी। स्वप्न भंग हो गया। मन सगाई में जाने के लिए ललक उठा। सचमुच आज सगाई का दिन था। थोड़ी देर बाद ही सगे-सम्बन्धी सगाई में जायेंगे। मंगलसेन को खाट पर बैठना असम्भव हो गया। बदन में छँटाक-भर खून था, मगर ऐसा उछलने लगा कि बैठने नहीं देता था। उसी वक्त घर का पुराना नौकर सन्तू आ गया और मंगलसेन के हाथ से चिलम लेकर पीने लगा। फिर बोला, ''तुम्हें सगाई पर नहीं ले जायेंगे चाचा।'' मंगलसेन ने सोचा सन्तू मजाक कर रहा है। उसने सन्तू से कहा, ''बड़ों के साथ मजाक नहीं किया करते, कई बार कहा। मुझे नहीं ले जायेंगे, तो क्या तुम्हें ले जायेंगे?'' सन्तू ने कहा कि वीरजी आये हैं, वे कहते हैं कि सगाई डलवाने सिर्फ बाबूजी जायेंगे और कोई नहीं। ऊपर चलो, सब खाना खा रहे हैं, तुम्हें नहीं ले जायेंगे चाहे दो-दो रुपये की शर्त लगा लो। ऊपर रसोईघर में सचमुच बहस चल रही थी। रसोईघर में दीवार से पीठ टिकाये बाबूजी बैठे थे। पुत्र वीरजी और बेटी मनोरमा दोनों भाई-बहन बैठे खाना खा रहे थे। वीरजी ने कहा कि मेरी सगाई सवा रुपये में होगी और केवल बाबूजी जायेंगे। मनोरमा कहती है कि मैं भी जाऊँगी। आजकल लड़कियाँ भी जाती हैं। इसी बीच मंगलसेन ने अन्दर झाँका। बाबूजी ने कहा आओ मंगलसेन, देखो यहाँ कौन बैठा है? वीरसिंह ने कहा, ''नमस्ते चाचाजी।'' बाबूजी ने कहा, ''उठकर चाचाजी को पालागन करो, तुम्हें इतना भी अक्ल नहीं है? वीरसिंह ने वैसा ही किया फिर बाबू जी ने मंगलसेन से कहा कि मंगलसेन जरा आकर टाँगें तो हिलाओ। माँ जी ने घूरकर देखा, ''नौकरों के सामने तो मंगलसेन के साथ इस तरह रुखाई से नहीं बोलना चाहिए।''

मंगलसेन को अपनी हैसियत पर बड़ा नाज था। किसी जमाने में वह फौज में रह चुका था। इस कारण वह अब भी सिर पर खाकी पगड़ी पहनता था। ऊँचा खानदान और शहर के धनी-मानी भाई के घर रहना, ऐंठता नहीं तो क्या करता। वह बाबूजी का चचेरा भाई था। वह गरीब था। गाँव से आकर वह शहर में बाबूजी के घर में रहता था और काम में हाथ बटाता था। नाटा कद, सूखा शरीर और मैले-कुचैले कपड़े पहन कर फौज का मोटा बूट पहनता था। सगाई में जाने के लिए लम्बी बहस के बाद तय हुआ कि बाबूजी के साथ मंगलसेन जायेंगे। उन्हें तैयार होने के लिए कहा गया तो ऐसे वेश में सामने आये जैसे कोई जोकर हो। फिर उन्हें दूसरों के कपड़े दिये गये। एक पगड़ी भी दी गयी। मंगलसेन का कायाकल्प हो गया। फिर वे समधियों के घर गये। बहुत कुछ मिला, जबकि बाबूजी केवल सवा रुपये की माँग दोहराते हैं। मंगलसेन की बड़ी आवभगत हुई। दूध पीते हुए मंगलसेन ने कहा कि मेरा भतीजा एम० ए० है क्या लड़की कुछ पढ़ी-लिखी है? घरातियों ने बताया कि लड़की बी० ए० पास है। जब घर के काम-धंधे जानने के बारे में बताया कि थोड़ा-बहुत जानती है तो मंगलसेन कहा, ''थोड़ा-बहुत क्यों? सगाई के बाद दोनों भाई लौट पड़े। मंगलसेन के कंधे पर थाल था, लाल रंग के रूमाल से ढका हुआ। घर पहुँचते ही मनोरमा दौड़कर मंगलसेन के हाथ से थाल झपट लिया और कहा, ''बाबूजी की पगड़ी पहन ली तो बाबूजी ही बन बैठे हैं। लाइए मुझे दीजिए। सब हँसने लगे। सारा कार्यक्रम चलता रहा। इसी बीच चाँदी का एक चम्मच खो गया। सबका शक मंगलसेन पर था। बाबूजी उसे सबके सामने फटकारा। मंगलसेन गिरकर बेहोश हो गया। किन्तु एक लड़के ने चम्मच लाकर दिया। वहीं कहीं गिरा हुआ था। सन्तू मंगलसेन को हवा देकर होश में लाने के लिए प्रयास कर रहा था।

पंचलाइट

पंचलाइट का अर्थ है पेट्रोमेक्स अथवा गैस की लालटेन। रेणु जी द्वारा लिखित इस कहानी में ग्रामीण जीवन का वास्तविक चित्र खींचा गया है। महतो टोली में गाँव के कुछ अशिक्षित लोग हैं। उन्होंने रामनवमी के मेले से एक पेट्रोमेक्स खरीदा। इस पेट्रोमेक्स को गाँववाले 'पंचलैट' कहकर पुकारते थे। पंचलैट खरीदने के बाद जो दस रुपये बच गये थे, उनसे पूजा की सामग्री आ गयी। सबको 'पंचलैट' आने की प्रसन्नता थी। इस खुशी में कीर्त्तन का आयोजन किया गया। थोड़ी देर में टोली के सभी लोग 'पंचलैट' देखने के लिए एकत्र हो गये। सरदार ने 'पंचलैट' खरीदने का पूरा किस्सा लोगों को सुनाया। टोली के लोगों ने अपने सरदार और दीवान को श्रद्धा-भरी नजरों से देखा। लेकिन प्रश्न यह पैदा हुआ कि 'पंचलैट' को जलायेगा कौन? खरीदने से पहले किसी के मस्तिष्क में यह बात नहीं आयी थी। यह निर्णय हुआ कि दूसरी पंचायत के आदमी की मदद से 'पंचलैट' नहीं जलाया जायगा, चाहे वह बिना जले ही पड़ा रहे। आज किसी ने अपने घर में ढिबरी (डिबिया) भी नहीं जलायी थी। 'पंचलैट' के न जलने से पंचों के चेहरे उतर गये। राजपूत टोली के लोग उनका मजाक बनाने लगे, लेकिन सबने धैर्यपूर्वक उस मजाक को सहन किया। गुलरी काकी की बेटी मुनरी वहीं पर बैठी थी। उसे पता था कि गोधन पंचलैट जलाना जानता है, लेकिन पंचायत ने गोधन का हुक्का-पानी बन्द कर रखा था। मुनरी गोधन से प्रेम करती थी। उसने अपनी बात अपनी सहेली कनेली को बतायी। कनेली ने यह सूचना सरदार तक पहुँचा दी कि गोधन 'पंचलैट' जलाना जानता है। सभी पंच सोच-विचार में पड़ गये कि गोधन को बुलाया जाय अथवा नहीं। अन्त में उसे बुलाने का निर्णय लिया गया।

सरदार ने छड़ीदार को भेजा। लेकिन छड़ीदार के कहने से गोधन 'पंचलैट' जलाने के लिए नहीं आया। बाद में गुलरी काकी गोधन के पास गयी और उसे मनाकर ले आयी। गोधन ने पूछा कि 'स्प्रिट' कहाँ है। 'स्प्रिट' का नाम सुनकर सभी लोग उदास हो गये, लेकिन गोधन ने अपनी होशियारी से गरी के तेल की सहायता से ही 'पंचलैट' जला दिया।

पंचलैट के जलने पर सभी लोगों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। पंच गोधन को पुनः जाति में ले लेते हैं। कीर्त्तनिया लोगों ने एक स्वर में महावीर स्वामी की जय-ध्वनि की। कीर्त्तन शुरू हो गया। गोधन ने सबका दिल जीत लिया। मुनरी ने भी प्रेम-दृष्टि से गोधन की ओर देखा। सरदार ने गोधन से कहा—

''तुम्हारा सात खून माफ। खूब गाओ सलीमा का गाना।'' अन्त में, गुलरी काकी ने गोधन को रात के खाने पर बुलाया।

लाटी

कप्तान जोशी अपनी रोगिणी पत्नी बानो के साथ टीबी अस्पताल गोठिया सैनेटोरियम के बँगला नम्बर तीन में पलंग के पास दिन भर आरामकुर्सी डाले बैठा रहता था। कभी अपने हाथों से टेम्प्रेचर चार्ट भरता और कभी समय देखकर दवाइयाँ देता। बगल के मरीजों की भी बड़ी तृष्णा और चाव से सेवा करता था। कभी वह मीठे स्वर में पहाड़ी झोड़े गाता जिनकी मिठास में तिब्बती बकरियों के गले में बँधी घण्टियों की-सी छुनक रहती। पहाड़ी मरीज हुमककर कहते, ''वाह कप्तान साहब, एक और।'' कप्तान अपनी पत्नी सुन्दरी 'बानो' की ओर देख बड़े लाड़ से मुस्करा देता। बानो का गोरा चेहरा बीमारी से एकदम पीला पड़ गया था। वह दिन-रात कप्तान को टुकुर-टुकुर देखती रहती। उन दिनों गोठिया का डॉक्टर एक अधेड़ स्विस था। उसने कप्तान से कहा तुम जरा भी परहेज नहीं करते। मरीज को दवा से जीतना होगा, मुहब्बत से नहीं। कप्तान लाल पड़ गया। उन्हीं दिनों कप्तान के बूढ़े पिता का पत्र आया। पत्र में उन्होंने लिखा था कि उनके दस-बीस पूत नहीं हैं, यह बीमारी सत्यानाशी है। किन्तु कप्तान पहले की तरह अलमस्त डोलता, कभी बानो के चिकने केशों को चूमता, कभी उसकी पलकों को, कभी किसी से मजाक करता। कुछ दिन बाद कप्तान उदास रहने लगा। बानो की बड़ी-बड़ी आँखों में भी उदासी के डोरे पड़ गये। कप्तान को वे पुराने दिन याद आने लगे जब वह बानो को अपने ओवरकोट में लपेट कर अपनी देह से सटाए लम्बे चीड़ की छाया में बैठा रहता था। वह बानो की हर जिद पूरी करता था। एक दिन शाम होते ही बानो मुरझाने लगी। डॉक्टर दलाल आया और कमरा खाली करवाने का नोटिस दे दिया। कल ही मरीज को यहाँ से ले जाना होगा। मरीज तीन दिन से ज्यादा नहीं बचेगी। कप्तान का चेहरा सफेद पड़ गया। दूसरे दिन सुबह उठा तो देखा बानो पलंग पर नहीं थी। खोज हुई किन्तु बानो कहीं नहीं मिली। दूसरे दिन घाट पर बानो की साड़ी मिली थी। शायद मृत्यु से पूर्व ही बानो नदी में मृत्यु से मिलने चली गयी थी। कुछ दिन तक कप्तान उसकी साड़ी को छाती से लगाये फिरता रहा। एक साल बाद कप्तान का फिर विवाह हुआ। कप्तान की नयी पत्नी के पिता मेजर जनरल थे। चालीस तमगे लगाकर उन्होंने कन्यादान किया। पत्नी प्रभा एम0ए0 पास इकलौती लड़की थी। बहुत जल्दी कप्तान का हँसना, खिलखिलाना सब भूल कर

रह गया। चार साल में कप्तान को दो बेटे और एक बेटी देकर प्रभा ने धन-संचय की ओर ध्यान दिया। फिर एक बार नोटों की मोटी गड्डी लेकर नैनीताल घूमने गये। अब कप्तान की थोड़ी तोंद निकल आयी थी, मूँछों में अब वह ऐंठ नहीं रह गयी थी। नैनीताल ग्राण्ड होटल में दोनों टिके। विभिन्न प्रकार के भोजन पैक कराकर पहाड़ घूमने दोनों निकले। भुवाली के पास गाड़ी रुकवाकर एक छोटी-सी चाय की दूकान पर चाय पीने उतरे। दूकानदार चाय बना ही रहा था कि अलख निरंजन करते वैष्णवियों का एक दल चाय की दूकान घेरकर खड़ा हो गया। हेड वैष्णवी बड़ी मुखर और मर्दानी थी। वह बोली, ''सोचा, बामण ज्यू की दूकान की चाय छोरियों को पिलाऊँ।'' सबको देखते हुए दूकानदार बोला, अरे लाटी भी आयी है? वैष्णवी ने कहा अरे कहाँ जाएगी अभागी? प्रभा और मेजर की दृष्टि लाटी पर पड़ी। देवांगना-सी लाटी हँस दी। मेजर का शरीर सुन्न पड़ गया, वह साक्षात् बानो ही थी। गूँगी जिह्वा पर गूँगापन चेहरे पर फैल कर उसे और भोला बना रहा था। प्रभा बोली, ''क्या यह गूँगी है, हे भगवान् कैसी सुन्दरता पायी है।'' दूकानदार ने कहा, ''हाँ सरकार, यह लाटी है, इसका असली नाम क्या है पता नहीं।'' हेड वैष्णवी ने कहा, ''हमारे गुरु महाराज को इसकी देह नदी में तैरती मिली। जीभड़ी कटकर गिर गयी थी। इसके गले में मंगलसूत्र था, ब्याह हो गया होगा। इसे भयंकर क्षयरोग था। गुरु की शरण में रोग-सोक ठीक हो गया, लाटी जीभ दिखा। लाटी भुवनमोहिनी हँसी हँस दी, जीभ नहीं दिखायी। प्रभा बोली, ''अपने आदमी को भी भूल गयी क्या?'' वैष्णवी बोली, ''इसे कुछ याद नहीं, फिक-फिक कर हँसती है।'' चाय का पैसा देकर वैष्णवी 'उठ साली लाटी' हल्की-सी ठोकर मारकर लाटी को उठाया। वे सब चले गये। लाटी उठी, दल के पीछे-पीछे चली गयी।

बहादुर

अमरकान्त जी द्वारा लिखित इस कहानी में आधुनिक भारत के छोटे-से परिवार का परिवेश है। बहादुर नेपाल का 12-13 वर्ष का लड़का है जो इस कहानी का नायक है। उसके पिता की युद्ध में मृत्यु हो चुकी थी। माँ की पिटाई से परेशान होकर वह घर से भागकर एक मध्यमवर्गीय परिवार में नौकरी कर ली। बहादुर परिश्रम से घर में काम करता था, जिससे गृहस्वामिनी निर्मला बहुत खुश रहती थी। निर्मला ने उसका नाम 'बहादुर' रखा। बहादुर देर रात तक काम करता और सुबह जल्दी उठकर काम में जुट जाता। वह इसी में खुश था और हर समय हँसता रहता था। वह रात को सोते समय पहाड़ी भाषा में कोई गीत गुनगुनाता रहता था। हँसना और हँसाना, मानो उसकी आदत बन गयी थी। किशोर निर्मला का उद्दण्ड बेटा था। उसने अपने सारे काम बहादुर को सौंप दिये थे। यदि बहादुर से उसके काम में तनिक-सी भी असावधानी होती तो उसकी पिटाई वह करता। पिटकर बहादुर एक कोने में चुपचाप खड़ा हो जाता और कुछ देर बाद पूर्ववत् काम में लग जाता। एक दिन किशोर ने बहादुर को 'सुअर का बच्चा' कह दिया। बहादुर इस गाली को सहन न कर सका और उसने उसका काम करने से मना कर दिया। अब तो घर की स्थिति यह हो गयी थी कि तनिक-सी गलती होने पर भी किशोर और निर्मला उसे जमकर पीटते। मारपीट और गालियों के कारण बहादुर से गलतियाँ और भूलें अधिक होने लगीं। एक रविवार को निर्मला के रिश्तेदार अपनी पत्नी और बच्चों के साथ निर्मला के घर आये। अचानक उस रिश्तेदार की पत्नी नीचे फर्श पर, चारपाई पर और कमरे के अन्दर कुछ ढूँढ़ने लगी। पूछने पर उसने बताया कि उसके ग्यारह रुपये खो गये हैं, जो उसने चारपाई पर ही निकालकर रखे थे। इसके बाद घर के सभी लोग बहादुर पर ही सन्देह करने लगे।

बहादुर ने रुपये उठा लेने से इन्कार कर दिया। सभी ने खूब पीटा और पुलिस के सुपुर्द करने की धमकी भी दी। सब सोच रहे थे कि पिटाई के डर से वह अपना अपराध स्वीकार कर लेगा, किन्तु जब उसने रुपये लिए ही नहीं तो वह कैसे कहता कि रुपये उसने उठाये थे। उस दिन से बहादुर बहुत ही खिन्न रहने लगा और एक दिन दोपहर को अपना सभी सामान छोड़कर वह घर से चला गया। निर्मला के पति शाम को जब दफ्तर से लौटे तो उन्हें पता चला कि बहादुर अपना सामान छोड़कर घर से चला गया। निर्मला, उसके पति और किशोर को उसकी ईमानदारी पर विश्वास हो गया था। उन्होंने सोचा कि रिश्तेदारों के रुपये भी उसने नहीं चुराये थे। घर के सभी सदस्य पश्चात्ताप करने लगे, लेकिन अब तो बहादुर चला गया था। बस, उसकी यादें ही शेष रह गयी थीं। बहादुर निर्धन तो था, पर स्वाभिमान और सहनशीलता उसमें कूट-कूटकर भरी थी।

कर्मनाशा की हार

कर्मनाशा एक नदी का नाम है, जिसके किनारे 'नयीडीह' नामक एक गाँव है। उस गाँव में भैरो पाँड़े नामक एक व्यक्ति हैं, जो पैरों से अपाहिज हैं। भैरो पाँड़े के माता-पिता की मृत्यु हो चुकी है। माता-पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने अपने दो वर्षीय छोटे भाई कुलदीप का पालन-पोषण पुत्र की तरह किया, जो अब सोलह वर्ष का नवयुवक हो चुका है। भैरो पाँड़े की पुश्तैनी मकान के

समीप ही एक मल्लाह परिवार रहता है। 'फुलमत' इसी परिवार की विधवा पुत्री है। एक दिन फुलमत भैरो पाँड़े के यहाँ बाल्टी माँगने आयी। बाल्टी देते समय कुलदीप फुलमत से टकरा गया। फुलमत पहले सकपकाती है, फिर मुस्करा देती है। कुलदीप भी उसकी ओर मुग्ध दृष्टि से देखता है। भैरो पाँड़े यह सब देख लेते हैं और कुलदीप के क्रिया-कलापों पर दृष्टि रखने लगते हैं। कुलदीप एवं फूलमत एक-दूसरे से प्रेम करने लगते हैं। वे दोनों एक दिन चाँदनी रात में कर्मनाशा के तट पर छुपकर मिलने गये। भैरो पाँड़े संयोगवश उन दोनों को देख लेते हैं। यह देखकर वे क्रोधित हो उठते हैं और दोनों को डाँटते हैं। कुलदीप के तो गाल पर थप्पड़ भी मार देते हैं। लज्जा और भय के कारण कुलदीप घर से भाग जाता है।

कुछ महीने के बाद कर्मनाशा नदी में बाढ़ आ गयी। गाँववालों में यह अन्धविश्वास प्रचलित है कि कर्मनाशा में जब बाढ़ आती है तो मानव-बलि अवश्य लेती है। फुलमत विधवा है, किन्तु वह कुलदीप के बच्चे को जन्म दे चुकी है। इस सूचना को प्राप्त करते ही सारे ग्रामीण कर्मनाशा की बाढ़ का कारण फुलमत को समझने लगते हैं और निर्णय लेते हैं कि उसे उसके बच्चे सहित कर्मनाशा में फेंक दिया जाय। फुलमत अपने बच्चे को छाती से चिपकाये भयभीत खड़ी थी। उसी समय भैरो पाँड़े आये। वे इस क्रूरता को रोकना चाहते हैं, किन्तु सामाजिक प्रतिष्ठा के नष्ट होने के भय से सत्य प्रकट करने से कतराते हैं। अन्त में भैरो पाँड़े बच्चे को गोद में लेकर निर्भीक स्वर में कहते हैं कि फुलमत उनके छोटे भाई की पत्नी है, उनकी बहू है और उसका बच्चा उनके छोटे भाई का पुत्र है। गाँव का मुखिया कहता है कि पाप का दण्ड तो भोगना ही पड़ेगा। इस पर भैरो पाँड़े कठोर स्वर में कहते हैं कि यदि वे यहाँ एकत्रित सभी के पापों को गिनाने लगें तो यहाँ खड़े सभी लोगों को कर्मनाशा की धारा में जाना पड़ेगा। भीड़ में सन्नाटा छा गया। नदी की बाढ़ भी उतर गयी।

ध्रुव-यात्रा

राजा रिपुदमन उत्तरी ध्रुव की यात्रा सफलतापूर्वक पूर्ण करके लौटते समय यूरोप के नगरों में जहाँ-जहाँ रुके वहाँ उनका भरपूर सम्मान हुआ। अखबारों में प्रकाशित इस खबर को पढ़कर उर्मिला प्रसन्न होकर अपने सोते शिशु का चुम्बन लिया। कई दिन तक अखबारों में ध्रुवयात्रा की खबर छपती रही और उर्मिला उसे पढ़ती रही। रिपुदमन मुम्बई आ पहुँचे, वहाँ भी उनका भरपूर स्वागत हुआ। शिष्टमण्डल के अनुरोध पर राजा रिपुदमन दिल्ली आये। वे सबसे सौजन्य से मिलते हैं। ऐसा लगा कि उन्हें प्रदर्शनों में उल्लास नहीं है। एक संवाददाता ने लिखा कि मैं मिला तो उनके चेहरे से ऐसा लगा कि वे यहाँ न हों, जाने कहीं दूर हों। उर्मिला ने इसे पढ़ा और अखबार अलग रख दिया। रिपुदमन ने यूरोप में आचार्य मारुति की ख्याति सुनी थी किन्तु दिल्ली में रहकर भी वे आचार्य मारुति को नहीं जानते थे। अवकाश पाते ही वे आचार्य मारुति के पास पहुँचे। अभिवादन के बाद मारुति ने पूछा कि वैद्य के पास रोगी आते हैं विजेता नहीं तो रिपुदमन ने कहा कि मुझे नींद नहीं आती, मन पर मेरा काबू नहीं रहता। आचार्य मारुति और राजा रिपुदमन में काफी देर तक बातें हुईं। रिपुदमन विवाह को बन्धन मानता है किन्तु प्रेम से इनकार नहीं करता है। एक दिन राजा रिपुदमन सिनेमा हाल के एक बाक्स में उर्मिला से मिलता है। उर्मिला उसकी प्रेमिका और उसके बेटे की माँ है। यह बात उन दोनों के अलावा तीसरा व्यक्ति नहीं जानता है। काफी बातें होती हैं। बच्चे का नाम रिपुदमन माधवेन्द्र बहादुर रखता है। उर्मिला पूछती है कि तुम अपना काम बीच में छोड़कर क्यों चले आये? वह कहती है तुम्हें मेरी और मेरे बच्चे की चिन्ता करना काम नहीं है। रिपुदमन कहता है कि मैं केवल तुम्हारा हूँ, तुम जो कहोगी वही करूँगा। क्या तुम अब भी नाराज हो। उर्मिला कहती है कि मुझे तुम पर गर्व है। तुम्हारा काम अब दक्षिणी ध्रुव पर विजय करना है, तुम्हें जाना ही होगा। यदि मेरे कारण तुम नहीं जाओगे तो मैं अपने को क्षमा नहीं कर पाऊँगी। मारुति की बात चलती है तो उर्मिला उसे ढोंगी कहती है किन्तु रिपुदमन के कहने पर वह मारुति के पास जाती है किन्तु उसके कहने पर विवाह के लिए तैयार नहीं होती है। मारुति रिपुदमन को बताता है कि उर्मिला उसकी सगी पुत्री है। उसे विवाह करके साथ रहना चाहिए। वह भी यही चाहता है किन्तु उर्मिला के हठ के कारण वह तीसरे दिन दक्षिणी ध्रुव जाने के लिए अमेरिका फोन पर बातें कीं और बताया कि परसों शटलैण्ड द्वीप के लिए पूरा जहाज हो गया है। उर्मिला के कुछ दिन रुकने के लिए कहने पर वह रुकने के लिए तैयार नहीं हुआ। इस खबर से अखबारों में धूम मच गयी। वह दिन भी आ गया जब रिपुदमन उससे दूर चला गया। उर्मिला कल्पनाओं में बहुत कुछ सोचती रहती थी। किन्तु अचानक तीसरे दिन उर्मिला ने अखबार में पढ़ा कि राजा रिपुदमन सबेरे खून में भरे पाये गये। गोली का कनपटी के आरपार निशान था। मृतक के तकिये के नीचे मिले पत्र का आशय था–यह यात्रा निजी थी। किसी के वचन को पूरा करने जा रहा था। ध्रुव पर भी बचना नहीं था। अब भी नहीं बचूँगा। भगवान् मेरे प्रिय के अर्थ और मेरी आत्मा की रक्षा करें।